Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2395-0390**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XI **No. - 4** **(Oct. – Dec.) 2025**

(Part – II)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Varanasi Management Review - **A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal**, *Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	असहयोग आंदोलन में चौरी चौरा की घटना का महत्व : एक ऐतिहासिक विश्लेषण ***डॉ. बबली कुमारी***	01-04
➲	मीडिया संस्कृति और नारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ***डॉ. अविनाश कुमार***	05-08
➲	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिंगीय विभेद के आधार पर उनकी शिक्षा के प्रति उनके अभिभावकों की दृष्टिकोण का अध्ययन ***डॉ. शारदा सिंह***	09-12
➲	राष्ट्र निर्माण में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचारों की भूमिका ***सनी कुमार***	13-19
➲	बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूपों का ऐतिहासिक विश्लेषण ***डॉ. नीतीश कुमार***	20-24
➲	वैकल्पिक चिंतन धारा का विकास : औपनिवेशिक मुंगेर में बहुजन चेतना का उभार ***सुमित कुमार***	25-32
➲	वाराणसी की शहरी झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य जागरूकता और सामाजिक कार्यकर्ताओं की प्रभावशीलता का अध्ययन ***विशाल कुमार सिंह***	33-36
➲	पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अनुशंसाओं का आलोचनात्मक अध्ययन ***मल्लिका*** ***प्रवीण कुमार तिवारी***	37-44
➲	अवधी लोकगीतों का सामाजिक जीवन में महत्व ***अमृता सिंह***	45-47
➲	ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति : एक अध्ययन ***डॉ. संध्या कुमारी***	48-50
➲	स्वस्थ भारत अभियान में महिलाओं की भूमिका ***डॉ. संगीता कुमारी***	51-53
➲	भारत छोड़ो आन्दोलन में मगध प्रमण्डल के महिलाओं की सहभागिता ***डॉ. रानी कुमारी***	54-58
➲	पूर्वी उत्तर प्रदेश की अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों पर राजकीय नीति एवं कार्यक्रमों का सामाजिक, आर्थिक विकास पर प्रभाव ***स्वाति शाही***	59-64

असहयोग आंदोलन में चौरी चौरा की घटना का महत्व : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. बबली कुमारी*

शोध सार :

प्रस्तुत शोध लेख ''असहयोग आंदोलन में चौरी चौरा की घटना का महत्व : एक ऐतिहासिक विश्लेषण'' का अध्ययन है । चौरी चौरा की घटना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक निर्णायक मोड़ साबित हुई। 4 फरवरी 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरी चौरा नामक स्थान पर पुलिस और आंदोलनकारियों के बीच हुई हिंसक झड़प ने असहयोग आंदोलन की दिशा और स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया। इस घटना में क्रोधित भीड़ द्वारा एक थाने में आग लगा दी गई, जिससे 22 पुलिसकर्मियों की मृत्यु हो गई। महात्मा गांधी, जो पूर्णतः अहिंसा के मार्ग पर चलने के पक्षधर थे, इस हिंसक घटना से आहत होकर उन्होंने असहयोग आंदोलन को अचानक स्थगित कर दिया।

यह शोध लेख इस घटना के ऐतिहासिक संदर्भ, कारणों और परिणामों का विश्लेषण करता है तथा यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार यह घटना भारतीय जनमानस, राष्ट्रीय नेतृत्व और आंदोलन की रणनीति को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी बन गई। चौरी चौरा ने यह प्रश्न भी उठाया कि क्या भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में पूर्णतः अहिंसात्मक आंदोलन संभव है। यह विश्लेषण इस ऐतिहासिक मोड़ को न केवल असहयोग आंदोलन के अंत के रूप में देखता है, बल्कि इसे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक चेतावनी और आत्ममंथन के क्षण के रूप में प्रस्तुत करता है।

विशिष्ट शब्द : ऐतिहासिक, रणनीति, विरोध, भागीदारी, आंदोलन, सामाजिक, स्वतंत्रता इत्यादि।

परिचय : भारत का स्वतंत्रता संग्राम एक दीर्घकालिक और बहुआयामी संघर्ष था, जिसमें विभिन्न आंदोलनों, नेताओं और घटनाओं ने अपनी विशिष्ट भूमिका निभाई। 1920 में महात्मा गांधी के नेतृत्व में आरंभ हुआ असहयोग आंदोलन इस संघर्ष का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसने देशभर में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनजागरण फैलाया। यह आंदोलन पूरी तरह से अहिंसा पर आधारित था और इसका उद्देश्य था ब्रिटिश प्रशासन, शिक्षण संस्थानों, न्यायालयों और वस्त्रों का बहिष्कार कर स्वराज की मांग को जनआंदोलन का रूप देना। इसने भारतीय जनमानस में एक नई चेतना और आत्मविश्वास का संचार किया। हालाँकि, 4 फरवरी 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के एक छोटे से कस्बे चौरी चौरा में घटित एक हिंसक घटना ने इस आंदोलन की दिशा ही बदल दी। जब आंदोलनकारियों की भीड़ ने स्थानीय पुलिस थाने में आग लगा दी, जिसमें 22 पुलिसकर्मियों की मृत्यु हो गई, तब यह घटना गांधीजी की अहिंसा की नीति के पूर्ण विपरीत मानी गई।[1] परिणामस्वरूप, महात्मा गांधी ने आंदोलन को अचानक वापस लेने का निर्णय लिया। यह निर्णय जहां एक ओर गांधीजी की वैचारिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है, वहीं दूसरी ओर यह राष्ट्रीय आंदोलन की रणनीति और नेतृत्व के स्तर पर गंभीर प्रश्न भी खड़े करता है।

चौरी चौरा जैसे ऐतिहासिक घटना ने न केवल असहयोग आंदोलन को एक अप्रत्याशित विराम दिया, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम के भीतर हिंसा–अहिंसा, जनभावनाओं की अभिव्यक्ति और नेतृत्व के निर्णयों के प्रभाव जैसे कई जटिल पहलुओं को भी उजागर किया। चौरी चौरा की घटना एक ऐसा मोड़ बन गई, जिसने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप, रणनीति और भविष्य की दिशा को प्रभावित किया।

इस शोध लेख में हम चौरी चौरा की घटना के ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों का विश्लेषण करेंगे, तथा यह समझने का प्रयास करेंगे कि क्यों और कैसे यह घटना असहयोग आंदोलन की समाप्ति का कारण बनी और इसका दीर्घकालिक प्रभाव भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर क्या पड़ा। साथ ही यह भी विवेचना की जाएगी कि क्या गांधीजी का आंदोलन वापस लेना तत्कालीन परिस्थितियों में उचित था या इससे जनांदोलन की गति को धक्का पहुँचा।

* सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, नालंदा महिला कॉलेज, बिहार शरीफ
E-mail : bably7dos@gmail.com, Mob. : 7004953722

असहयोग आंदोलन पूर्णतः अहिंसक आंदोलन था जिसमें हिंसा का कोई स्थान नहीं था। लेकिन 5 फरवरी, 1922 को गोरखपुर (उत्तरप्रदेश) के चौरा–चौरी नामक स्थान पर आंदोलनकारियों की भीड़ ने पुलिस थाना पर हमला कर अनेक पुलिसकर्मियों को जिंदा जला दिया। इस घटना से गाँधीजी काफी दुखित हुए और उन्होंने तत्काल असहयोग आंदोलन को वापस लेने का निर्णय किया।[2] 1 अगस्त 1920 को महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध देश में अहसहयोग आंदोलन छेड़ा था, इस आंदोलन का त्वरित कारण, जलियाँवाला बाग नरसंहार था, इस आंदोलन के तहत स्वदेशी का उपयोग करना, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना, इसके साथ ही शासन, प्रशासन में सरकार को असहयोग देना, यही इस आंदोलन का प्रमुख लक्ष्य था, 1921–22 में देश में इस्लामी खलीफा के समर्थन में, खिलाफत आंदोलन भी प्रारंभ हो गया था, जिसे कॉंग्रेस ने समर्थन दिया था, महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन चरम पर था, उसी समय उत्तर–प्रदेश के गोरखपुर के चौरी–चौरा नाम के स्थान पर, एक घटना घटी जिसे चौरी–चौरा कांड कहते हैं, इस घटना से आहत होकर महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन को वापस ले लिया था।

चौरी–चौरा की घटना : घटना से कुछ दिन पहले की बात है, कुछ आंदोलनकारियों ने मुँडेरा बाजार पर धरना दिया था, लेकिन बाजार के मालिक संतबक्स सिंह के आदमियों ने, थाने से पुलिस बुला रखी थी, पुलिस वालों ने आंदोलनकारियों को पीट कर खदेड़ दिया। इसीलिए आंदोलनकारियों ने पीटने और गिरफ्तार होने के भय से अगली बार और भी संख्या में आने का फैसला लिया, इनको प्रशिक्षण दे रहे थे भगवान अहीर, जो प्रथम विश्वयुद्ध के समय ब्रिटिश सेना में थे और इराक में तैनात थे।[3] 4 फरवरी 1922 को शनिवार के दिन लगभग 8 बजे से ही सैकड़ों लोग मुंडेरा बाजार में इकट्ठा होने लगे थे, इधर थाने को भी इसकी भनक लग गई थी, उन्होंने गोरखपुर और पास के थानों से अतिरिक्त पुलिस बाल बुला लिया था, उनके पास बंदूकें भी थीं। इलाके के एक जमींदार उमराव सिंह के प्रबंधक हरचरण सिंह ने आंदोलनकारियों और पुलिस के बीच मध्यस्थता करने की कोशिस की, आंदोलनकारियों ने आश्वासन दिया कि वह शांतिपूर्ण जुलूस ही निकालेंगे, जुलूस लगभग शांतिपूर्ण निकल ही रहा था की आंदोलनकारियों और पुलिककर्मियों में किसी बात को लेकर विवाद हो गया, भीड़ को नियंत्रित करने के लिए पुलिसकर्मियों ने दारोगा के आदेश पर गोली चला दी, जिसमें कुछ आंदोलनकारियों की मृत्यु हो गई, इस कृत्य से गुस्साई भीड़ ने थाने पर धावा बोल दिया, गोली खत्म होने के बाद पुलिककर्मी जान बचाने के लिए थाने के अंदर चले गए, गुस्साई भीड़ ने थाना को ही फूँक दिया, दरोगा गुप्तेश्वर सिंह ने भागने की भी कोशिश की, लेकिन भीड़ ने उसे भी पकड़कर आग में फेंक दिया।[4]

रीवा में अवैध कालोनाइजर्स एफआईआर होगी दर्ज, दस्तावेज सौंपने तीन दिन का दिया गया समय दरोगा के अलावा सब–इंस्पेक्टर पृथ्वी पाल सिंह, बशीर खां, कपिलदेव सिंह, लखई सिंह, रघुवीर सिंह, विशेसर यादव, मुहम्मद अली, हसन खां, गदाबख्श खां, जमा खां, मंगरू चौबे, रामबली पाण्डेय, कपिल देव, इन्द्रासन सिंह, रामलखन सिंह, मर्दाना खां, जगदेव सिंह, जगई सिंह को भी आग के हवाले कर दिया गया, उस दिन थाने में वेतन लेने के लिए गाँव के कुछ चौकीदार भी आए थे, चौकीदार वजीर, घिंसई, जथई और कतवारू राम को भी आंदोलनकारियों ने जलती आग में फेंक दिया, कुल मिलाकर बाईस पुलिसवाले जिंदा जलाकर मार दिए गए।[5] हालांकि आंदोलनकारियों ने थाने परिसर में ही स्थित पुलिस वालों के बीवी–बच्चों को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया, मुहम्मद सिद्दिकी नाम का एक सिपाही किसी तरह बच गया था, उसी ने नजदीकी थाने और गोरखपुर में बड़े आधिकारियों को इस घटना के बारे में सूचित किया।

इस आंदोलन के बाद ब्रिटिश सरकार ने सैकड़ों आंदोलनकारियों पर केस दर्ज किया, पुलिस रिपोर्ट के अनुसार लगभग 6000 लोग इस घटना के समय उपस्थित थे, इनमें से करीब 1000 लोगों से पूछताछ की गई, और इसी आधार पर गोरखपुर कोर्ट ने लगभग 225 आन्दोलकारियों के खिलाफ सुनवाई शुरू की और 172 लोगों को मौत की सजा सुनाई, गोरखपुर कॉंग्रेस कमेटी ने इस फैसले के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील की, जहां कॉंग्रेस के बड़े नेता पंडित मदन मोहन मालवीय ने इस केस की पैरवी की, बाद में हाई कोर्ट ने 19 लोगों को मृत्युदंड दिया, 16 लोगों को कालापानी भेज दिया, कुछ लोगों को कारावास की सजा हुई और लगभग 38 लोगों को बरी कर दिया गया।[6]

जब महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन बंद कर दिया इस घटना में हुई हिंसा के बाद दुखी होकर महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया था, गांधी जी ने 12 फरवरी को कॉंग्रेस वर्किंग कॉमेटी के सामने असहयोग आंदोलन को स्थगित कर देने का प्रस्ताव रखा, और इसके बाद औपचारिक रूप से यह आंदोलन बंद हो गया। जिसके बाद मोतीलाल नेहरू, देशबंधु बाबू चितरंजन दास समेत कई कॉंग्रेस

नेताओं ने अपनी असहमति भी जताई, जिसके बाद दिसंबर में हुए काँग्रेस के गया अधिवेशन में यह दोनों नेताओं ने काँग्रेस से अलग होकर स्वराज पार्टी की स्थापना की इसी पार्टी की यूथ इकाई हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन थी जिसके साथ रामप्रसाद बिस्मिल, आशफाकउल्ला खान, चंद्रशेखर आजाद और भगत सिंह इत्यादि नौजवान क्रांतिकारी भी जुड़े थे, जो शायद महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा से सहमत नहीं थे। असहयोग आंदोलन के अचानक से समाप्त हो जाने पर, खिलाफत आंदोलन के प्रमुख मुस्लिम नेताओं का काँग्रेस से मोहभंग हो गया। हालांकि ब्रिटिश सरकार ने असहयोग आंदोलन के चलते, गांधी जी के विरुद्ध राजद्रोह का मुकदमा भी शुरू किया था, और उन्हें 6 वर्ष की सजा भी दी गई थी।

ब्रिटिश सरकार ने मारे गए पुलिसकर्मियों की याद में एक स्मारक की स्थापना की, जिसमें आजादी के बाद जयहिन्द लिख दिया गया, स्थानीय लोग उन 19 आन्दोलकारियों को नहीं भूले, जिन्हें फांसी की सजा दी गई थी, 1971 में 'शहीद स्मारक समिति' का निर्माण किया गया। 1973 में समिति ने झील के पास 12.2 मीटर ऊँची एक त्रिकोणीय मीनार का निर्माण करवाया, जिसमें तीनों फलकों पर गले में फाँसी का फन्दा को चित्रित किया गया।[7] बाद में भारतीय रेल्वे ने 1990 में गोरखपुर से इलाहाबाद तक एक रेल सेवा प्रारंभ की, जिसे चौरी–चौरा एक्स्प्रेस कहा गया, 2022 को इस घटना के 100 वर्ष पूर्ण होने के बाद उत्तर प्रदेश सरकार ने शताब्दी समारोह का आयोजन किया और एक डाक टिकट भी जारी किया।

चौरी–चौरा की घटना

- चौरी–चौरा कस्बे में 4 फरवरी को स्वयंसेवकों ने बैठक की और जुलूस निकालने के लिये पास के मुंडेरा बाजार को चुना गया।
- पुलिस ने भीड़ पर गोलियाँ चलाईं जिसमें कुछ लोग मारे गए और कई स्वयंसेवक घायल हो गए।
- जवाबी कार्रवाई में भीड़ ने थाने में आग लगा दी।
- कुछ भागने की कोशिश कर रहे पुलिसकर्मियों को पीट–पीटकर मार डाला गया। हथियारों सहित पुलिस की काफी सारी संपत्ति नष्ट कर दी गई।

अंग्रेजों की प्रतिक्रिया

- ब्रिटिश राज ने अभियुक्तों पर आक्रामक रूप से मुकदमा चलाया।
- एक सत्र अदालत ने 225 आरोपियों में से 172 को तुरंत मौत की सजा सुनाई। हालाँकि अंततः दोषी ठहराए गए लोगों में से केवल 19 को फाँसी दी गई थी।

महात्मा गांधी की प्रतिक्रिया

- गांधीजी ने पुलिसकर्मियों की हत्या की निंदा की और आस–पास के गाँवों में स्वयंसेवक समूहों को भंग कर दिया गया। इस घटना पर सहानुभूति जताने तथा प्रायश्चित करने के लिये एक 'चौरी–चौरा सहायता कोष' स्थापित किया गया था।
- गांधीजी ने असहयोग आंदोलन में हिंसा का प्रवेश देख इसे रोकने का फैसला किया।
- उन्होंने अपनी इच्छा 'कॉन्ग्रेस वर्किंग कमेटी' को बताई और 12 फरवरी, 1922 को सत्याग्रह (आंदोलन) आंदोलन औपचारिक रूप से वापस ले लिया गया।
- गांधी ने अहिंसा में अपने अटूट विश्वास के आधार पर खुद को सही ठहराया।

अन्य राष्ट्रीय नेताओं की प्रतिक्रिया

- असहयोग आंदोलन का नेतृत्व करने वाले जवाहरलाल नेहरू और अन्य नेता हैरान थे कि गांधीजी ने संघर्ष को उस समय रोक दिया जब नागरिक प्रतिरोध ने स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी।
- मोतीलाल नेहरू और सी.आर. दास जैसे अन्य नेताओं ने गांधीजी के फैसले पर नाराजगी व्यक्त की और स्वराज पार्टी की स्थापना का फैसला किया।

तत्काल परिणाम

- असहयोग आंदोलन की वापसी ने कई युवा भारतीय राष्ट्रवादियों को इस निष्कर्ष पर पहुँचाया कि भारत अहिंसा के माध्यम से औपनिवेशिक शासन से मुक्त नहीं हो पाएगा।
- इन क्रांतिकारियों में जोगेश चटर्जी, रामप्रसाद बिस्मिल, सचिन सान्याल, अशफाकुल्ला खान, जतिन दास, भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा, मास्टर सूर्य सेन आदि शामिल थे।
- असहयोग आंदोलन की अचानक समाप्ति से खिलाफत आंदोलन के नेताओं का कॉन्ग्रेस के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय आंदोलनों से मोहभंग हो गया, फलतः कॉन्ग्रेस और मुस्लिम नेताओं के बीच दरार पैदा हो गई।

उद्देश्य :–

1. चौरी चौरा की घटना के ऐतिहासिक कारणों के अतिरिक्त सामाजिक, राजनीतिक और स्थानीय परिस्थितियाँ की पहचान करना।
2. चौरी चौरा की घटना का विस्तृत विश्लेषण करना ।
3. महात्मा गांधी के निर्णय का मूल्यांकन, आंदोलन को वापस लेने का उनका निर्णय कितना उचित था इसे ज्ञात करना ।
4. राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रभाव, चौरी चौरा की घटना के बाद स्वतंत्रता संग्राम की दिशा, रणनीति और जनमानस पर पड़े प्रभावों का अध्ययन करना ।
5. हिंसा और अहिंसा की बहस का विश्लेषण, अहिंसात्मक आंदोलन व्यवहारिक रूप से संभव था या नहीं, इस पर विमर्श करना।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः चौरी चौरा की घटना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुई। यह केवल एक स्थानीय हिंसक प्रतिक्रिया नहीं थी, बल्कि उस समय की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों, जनमानस की भावनाओं और नेतृत्व की वैचारिक दृढ़ता का टकराव भी थी। इस घटना ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत जैसे विशाल और विविध देश में केवल अहिंसा पर आधारित आंदोलन चलाना कितना जटिल और चुनौतीपूर्ण कार्य है। महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन को वापस लेना एक साहसी किंतु विवादास्पद निर्णय था। यह निर्णय जहां गांधीजी के सिद्धांतों के प्रति उनकी निष्ठा को दर्शाता है, वहीं यह प्रश्न भी उठाता है कि क्या यह निर्णय जनआंदोलन की तीव्रता और जनता की सहभागिता के अनुकूल था। कई इतिहासकारों का मानना है कि यदि आंदोलन को जारी रखा गया होता, तो भारत की स्वतंत्रता कुछ वर्ष पहले ही प्राप्त हो सकती थी।

इस प्रकार, चौरी चौरा की घटना न केवल असहयोग आंदोलन की समाप्ति का कारण बनी, बल्कि इसने राष्ट्रीय आंदोलन की दिशा, नेतृत्व की सोच और अहिंसा की सीमाओं को पुनः परिभाषित किया। यह घटना भारतीय इतिहास में एक चेतावनी के रूप में याद की जाती है कि स्वतंत्रता की राह में भावनाओं और आदर्शों के बीच संतुलन बनाना अत्यंत आवश्यक होता है।

संदर्भ सूची

1. गांधी, म. क. (2008), मेरे सत्य के प्रयोग (आत्मकथा) (महादेव देसाई, अनुवादक). नवजीवन प्रकाशन मंडल, पृ0 55
2. गुप्त, वी. पी. (2014), भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नई दिल्ली, साहित्य भवन, पृ0 19
3. शर्मा, आर. एस. (2010), भारत का आधुनिक इतिहास. नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 26
4. चंद्र, बी., मुखर्जी, म., मुखर्जी, अ., पनिक्कर, के. एन., – महाजन, स. (2019). भारत का स्वतंत्रता संग्राम. नई दिल्ली, पियरसन, पृ0 87
5. सरकार, सुमित. (2012), भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, एक सामाजिक इतिहास. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 127
6. नेहरू, ज. (2004), भारत की खोज. नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स इंडिया, पृ0 78
7. सिंह, इंद्रपाल, (2017), चौरी चौरा, एक पुनर्पाठ. लखनऊ, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, पृ0 143

मीडिया संस्कृति और नारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अविनाश कुमार*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''मीडिया संस्कृति और नारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'' का अध्ययन है। समकालीन वैश्विक परिदृश्य में मीडिया अब मात्र सूचना–प्रसारण या मनोरंजन का माध्यम नहीं रहा, बल्कि वह सामाजिक यथार्थ के सृजन और पुनर्संरचना की एक प्रभावशाली संरचना के रूप में स्थापित हो चुका है। मीडिया संस्कृति समाज की धारणाओं, प्रतीक–व्यवस्था, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों तथा लैंगिक भूमिकाओं के निर्माण और प्रसार में केंद्रीय भूमिका निभाती है। विशेष रूप से स्त्री के संदर्भ में मीडिया की भूमिका अत्यंत जटिल, विरोधाभासी और बहुस्तरीय हैकृजहाँ एक ओर वह महिला की आत्मनिर्भर, सशक्त और स्वायत्त छवि को उभारता है, वहीं दूसरी ओर उसे वस्तुकरण, रूढ़ छवियों और उपभोक्तावादी उत्पाद के रूप में भी प्रस्तुत करता है।

विशिष्ट शब्द : मीडिया संस्कृति, नारी, समाजशास्त्र, वस्तुकरण, पितृसत्ता, सशक्तिकरण, लैंगिक प्रतिनिधित्व आदि।

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध–लेख मीडिया संस्कृति और नारी के पारस्परिक संबंधों का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करता है। इसमें विज्ञापनों, सिनेमा, टेलीविजन, डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया में स्त्री–प्रतिनिधित्व की प्रकृति तथा उसके सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभावों का परीक्षण किया गया है। साथ ही नारीवादी सिद्धांत, सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि, प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद तथा आलोचनात्मक सिद्धांत के आधार पर मीडिया संस्कृति की समालोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

इक्कीसवीं सदी का वैश्विक समाज संचार–क्रांति के प्रभाव में तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। सूचना–प्रौद्योगिकी, इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने मनुष्य के अनुभव–जगत, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक उपभोग की प्रकृति को मौलिक रूप से बदल दिया है। आज मीडिया केवल घटनाओं का दर्पण नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का सक्रिय निर्माता (Active Constructor of Reality) बन चुका है। वह न केवल यह बताता है कि समाज में क्या हो रहा है, बल्कि यह भी निर्धारित करता है कि समाज को किस प्रकार सोचना, देखना और प्रतिक्रिया देना चाहिए।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से मीडिया एक ऐसी संस्था है, जो सामाजिक संरचना, शक्ति–संतुलन और सांस्कृतिक वर्चस्व को निर्मित एवं वैधता प्रदान करती है। Pierre Bourdieu ने 'सांस्कृतिक पूँजी' (Cultural Capital) की अवधारणा के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि सांस्कृतिक संसाधनों का वितरण समाज में असमानताओं को बनाए रखने में सहायक होता है। मीडिया इसी सांस्कृतिक पूँजी का एक प्रमुख स्रोत है, जो प्रतीकों, भाषा और छवियों के माध्यम से सामाजिक श्रेणियों को स्थापित करता है।

नारी और मीडिया का संबंध विशेष रूप से जटिल और बहुआयामी है। इतिहास में स्त्री की सामाजिक स्थिति पितृसत्तात्मक संरचनाओं से प्रभावित रही है। परंपरागत समाज में स्त्री को घरेलू दायित्वों तक सीमित रखा गया, जबकि आधुनिकता और शिक्षा ने उसे सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भागीदारी का अवसर दिया। मीडिया संस्कृति ने इस परिवर्तनशील प्रक्रिया को न केवल प्रतिबिंबित किया, बल्कि उसे दिशा भी प्रदान की।

फ्रांसीसी दार्शनिक Simone de Beauvoir का प्रसिद्ध कथन" स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती है"कृयह संकेत देता है कि स्त्रीत्व (Femininity) एक सामाजिक निर्माण है। मीडिया इस 'निर्माण' की प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाता है। विज्ञापनों, फिल्मों, धारावाहिकों और समाचारों में प्रस्तुत स्त्री–छवियाँ समाज के लिए आदर्श मानक स्थापित करती हैं, जिनका प्रभाव व्यवहार, आकांक्षाओं और आत्म–छवि पर पड़ता है।

* एम.ए., पी–एच0 डी0, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 80029 06603, E-mail id : avinash2654@gmail.com

समकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति में मीडिया ने स्त्री को दो विरोधाभासी रूपों में प्रस्तुत किया हैकृ एक ओर वह 'सशक्त', आत्मनिर्भर और पेशेवर महिला की छवि गढ़ता है, तो दूसरी ओर उसे सौंदर्य, आकर्षण और वस्तुकरण के माध्यम से बाजार का उपकरण भी बनाता है। यह द्वैत (Duality) मीडिया संस्कृति की अंतर्निहित संरचनात्मक विसंगतियों को उजागर करता है।

भारतीय संदर्भ में यह विमर्श और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यहाँ परंपरा और आधुनिकता का सह–अस्तित्व है। भारतीय टेलीविजन धारावाहिकों में जहाँ एक ओर पारिवारिक मूल्यों और त्यागमयी स्त्री की छवि प्रमुख रही है, वहीं डिजिटल प्लेटफॉर्म पर स्वतंत्र विचारधारा और लैंगिक समानता की मांग करने वाली स्त्रियों की आवाज भी उभर रही है।

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और उदारीकरण के पश्चात मीडिया उद्योग का तीव्र व्यावसायीकरण हुआ है। विज्ञापन, फैशन और मनोरंजन उद्योग में स्त्री–शरीर को उपभोक्तावादी रणनीति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रक्रिया न केवल लैंगिक रूढ़िवादिता को पुनरुत्पादित करती है, बल्कि स्त्री के आत्मसम्मान और पहचान पर भी प्रभाव डालती है।

डिजिटल युग में सोशल मीडिया ने स्त्रियों को अपनी अभिव्यक्ति का नया मंच दिया है। ऑनलाइन अभियानों और डिजिटल आंदोलनों ने लैंगिक न्याय, यौन उत्पीड़न और समानता जैसे मुद्दों को वैश्विक विमर्श का हिस्सा बनाया है। इस प्रकार मीडिया संस्कृति एक संघर्ष–क्षेत्र (Field of Struggle) बन गई है, जहाँ पितृसत्ता और नारी सशक्तिकरण के बीच निरंतर संवाद और टकराव जारी है।

मीडिया संस्कृति की संकल्पना

मीडिया संस्कृति से आशय उस सांस्कृतिक वातावरण से है, जिसमें जनसंचार माध्यमों के द्वारा निर्मित प्रतीक, विचार, जीवन–शैली और मूल्य समाज में व्यापक रूप से स्वीकृत और उपभोग किए जाते हैं।

अमेरिकी विद्वान Herbert Marcuse ने आधुनिक औद्योगिक समाज में मीडिया को 'वन–डायमेंशनल' चेतना के निर्माण का माध्यम बताया। इसी प्रकार Theodor W- Adorno और Max Horkheimer ने 'संस्कृति उद्योग' (Culture Industry) की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए तर्क दिया कि मीडिया पूँजीवादी व्यवस्था के हितों को वैधता प्रदान करता है। इन विचारों के आलोक में मीडिया संस्कृति को शक्ति, वर्चस्व और विचारधारात्मक नियंत्रण के उपकरण के रूप में देखा जा सकता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

(क) संरचनात्मक–कार्यात्मक दृष्टिकोण : इस दृष्टिकोण के अनुसार मीडिया समाज में एकीकरण, सामाजिककरण और मूल्य–संप्रेषण का कार्य करता है। नारी की भूमिकाओं का चित्रण समाज के लिए 'आदर्श' भूमिकाओं को स्थापित करता है।

(ख) मार्क्सवादी दृष्टिकोण : मार्क्सवादी दृष्टिकोण मीडिया को पूँजीवादी हितों का उपकरण मानता है। विज्ञापनों में स्त्री का वस्तुकरण उपभोक्तावाद को बढ़ावा देता है। स्त्री–शरीर को बाजार के लिए 'उत्पाद' बना दिया जाता है।

(ग) प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद : इस दृष्टिकोण में मीडिया के प्रतीकों और छवियों के माध्यम से स्त्री की पहचान निर्मित होती है। टीवी धारावाहिकों और फिल्मों में प्रस्तुत 'आदर्श नारी' की छवि सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती है।

(घ) नारीवादी दृष्टिकोण : नारीवादी सिद्धांत मीडिया में लैंगिक असमानताओं और पितृसत्तात्मक संरचनाओं की आलोचना करता है। ैपउवदम कम ठमंनअवपत ने कहा था कि "स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती है।" मीडिया इस 'निर्माण' की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है।

मीडिया में नारी की छवि

(1) पारंपरिक छवि : भारतीय मीडिया में लंबे समय तक स्त्री को त्यागमयी, सहनशील, गृहिणी के रूप में चित्रित किया गया।

(2) आधुनिक और ग्लैमरस छवि : उदारीकरण के बाद विज्ञापनों और फिल्मों में स्त्री की छवि अधिक उपभोक्तावादी और आकर्षण–केंद्रित हो गई।

(3) वस्तुकरण : विज्ञापनों में स्त्री–शरीर का प्रयोग उत्पाद बेचने के लिए किया जाता है। यह प्रवृत्ति स्त्री को व्यक्ति के बजाय वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती है।

(4) सशक्तिकरण की छवि : हाल के वर्षों में मीडिया में कार्यरत, आत्मनिर्भर और नेतृत्वकारी भूमिका निभाती स्त्रियों की छवि भी उभरी है।

5. सोशल मीडिया और डिजिटल नारीवाद : डिजिटल क्रांति ने नारीवादी आंदोलनों को नया मंच दिया है। रुडमज्वव जैसे अभियानों ने लैंगिक उत्पीड़न के मुद्दों को वैश्विक विमर्श का हिस्सा बनाया।

भारत में भी सोशल मीडिया ने स्त्रियों को अपनी आवाज उठाने का मंच प्रदान किया है। यह 'डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र' (Digital Public Sphere) का निर्माण करता है, जहाँ स्त्रियाँ अपनी पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकती हैं।

अतः "मीडिया संस्कृति और नारी" का अध्ययन केवल स्त्री–छवि के विश्लेषण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, शक्ति–संबंध, सांस्कृतिक वर्चस्व, उपभोक्तावाद और पहचान–निर्माण की व्यापक प्रक्रिया को समझने का प्रयास है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह विषय समकालीन समाज की जटिलताओं को समझने के लिए अत्यंत प्रासंगिक और आवश्यक है।

साहित्य समीक्षा

अनन्या शर्मा (2025), शर्मा ने एल्गोरिद्मिक क्यूरेशन और महिला कंटेंट–क्रिएटर्स की दृश्यता पर अध्ययन करते हुए पाया कि प्लेटफॉर्म के सिफारिशी तंत्र सौंदर्य–मानकों और बाजार–उन्मुख कंटेंट को प्राथमिकता देते हैं, जिससे वैकल्पिकध्नारीवादी आवाजों की पहुँच सीमित होती है।[1]

रोजालिंड गिल (2024), गिल ने उत्तर–नारीवादी मीडिया संस्कृति की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें स्त्री–सशक्तिकरण की भाषा का उपयोग करते हुए उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया जाता है। उनके अनुसार आधुनिक मीडिया स्त्री को "चयन की स्वतंत्रता" का भ्रम देता है, जबकि वास्तव में वह बाजार–तंत्र से संचालित होता है।[2]

जूडिथ बटलर (2024), बटलर ने जेंडर परफॉर्मेटिविटी का सिद्धांत प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार लैंगिक पहचान सामाजिक क्रियाओं और प्रदर्शन के माध्यम से निर्मित होती है। मीडिया में स्त्री–छवि इसी सामाजिक प्रदर्शन की पुनरावृत्ति के रूप में देखी जा सकती है।[3]

नीलिमा चौधरी (2023), चौधरी ने ऑनलाइन उत्पीड़न और डिजिटल प्रतिरोध के द्वंद्वात्मक संबंध का विश्लेषण किया। उन्होंने सोशल मीडिया को 'संघर्ष–क्षेत्र' के रूप में परिभाषित किया।[4]

मंजरी मिश्रा (2021) मिश्रा ने विज्ञापन उद्योग में स्त्री–शरीर के वस्तुकरण को पूँजीवादी बाजार–रणनीति से जोड़ा और बताया कि यह प्रक्रिया लैंगिक असमानताओं को पुनरुत्पादित करती है।[5]

शोशाना जुबॉफ (2019), जुबॉफ ने डिजिटल प्लेटफॉर्म और डेटा–निगरानी के माध्यम से उभरते 'सर्विलांस कैपिटलिज्म' का विश्लेषण किया। यह अध्ययन दर्शाता है कि महिलाओं की ऑनलाइन गतिविधियाँ भी बाजार–आधारित डेटा–संरचना में समाहित हो जाती हैं।[6]

सुषमा यादव (2018), यादव ने रुडमज्वव आंदोलन के भारतीय संदर्भ का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि सोशल मीडिया ने स्त्रियों को सामूहिक प्रतिरोध का मंच प्रदान किया।[7]

डग्लस केलनर (2015), केलनर ने मीडिया संस्कृति को पहचान–निर्माण, विचारधारात्मक नियंत्रण और शक्ति–संरचना से जोड़ा। उनके अनुसार मीडिया सामाजिक वास्तविकता का निर्माण करता है और लैंगिक भूमिकाओं को वैधता प्रदान करता है।[8]

नैन्सी फ्रेजर (2013), फ्रेजर ने सार्वजनिक क्षेत्र की पुर्नव्याख्या करते हुए डिजिटल मंचों को वैकल्पिक नारीवादी विमर्श का क्षेत्र माना। उन्होंने नवउदारवादी पूँजीवाद और नारीवादी राजनीति के अंतर्संबंध की आलोचनात्मक समीक्षा की।[9]

उद्देश्य

1. मीडिया संस्कृति की संकल्पना और स्वरूप का विश्लेषण करना तथा यह समझना कि समकालीन समाज में मीडिया किस प्रकार सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक मान्यताओं का निर्माण करता है।
2. मीडिया में नारी–प्रतिनिधित्व का अध्ययन करना/विशेषकर प्रिंट मीडिया, टेलीविजन, सिनेमा, विज्ञापन और सोशल मीडिया के संदर्भ में।
3. स्त्री–छवि के वस्तुकरण और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना, तथा यह देखना कि बाजार–केन्द्रित मीडिया किस प्रकार स्त्री–शरीर को उत्पाद में रूपांतरित करता है।
4. डिजिटल मीडिया और नारी सशक्तिकरण के संबंध का अध्ययन करना, विशेष रूप से सोशल मीडिया अभियानों और डिजिटल नारीवाद के संदर्भ में।
5. मीडिया में लैंगिक रूढ़िवादिता की पहचान करना और उनके सामाजिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।

परिकल्पना

1. प्रिंट, टेलीविजन और विज्ञापन मीडिया में नारी का प्रतिनिधित्व मुख्यतः पारंपरिक एवं रूढ़िवादी लैंगिक भूमिकाओं पर आधारित है।
2. उपभोक्तावादी मीडिया संस्कृति में स्त्री–शरीर का वस्तुकरण अधिक पाया जाता है, जिससे लैंगिक असमानताओं का पुनरुत्पादन होता है।
3. सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म नारी सशक्तिकरण और वैकल्पिक अभिव्यक्ति के लिए अधिक अवसर प्रदान करते हैं।
4. शहरी क्षेत्रों की महिलाओं पर मीडिया का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक स्पष्ट और प्रत्यक्ष होता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मीडिया संस्कृति और नारी का संबंध बहुआयामी, जटिल तथा निरंतर परिवर्तनशील है। मीडिया केवल सूचना का माध्यम नहीं, बल्कि वह सामाजिक यथार्थ का निर्माणकर्ता (Social Constructor) है, जो प्रतीकों, छवियों और कथाओं के माध्यम से लैंगिक भूमिकाओं को परिभाषित करता है। इस प्रक्रिया में मीडिया कभी पितृसत्तात्मक संरचनाओं को सुदृढ़ करता है तो कभी उन्हें चुनौती भी देता है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पारंपरिक मीडियाकृजैसे टेलीविजन, सिनेमा और विज्ञापनकृ में नारी का प्रतिनिधित्व लंबे समय तक रूढ़िवादी और वस्तुकरण–आधारित रहा है। स्त्री–शरीर को उपभोक्तावादी रणनीति के रूप में प्रस्तुत करना बाजार–केन्द्रित मीडिया संस्कृति की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। यह प्रवृत्ति न केवल लैंगिक असमानताओं को पुनरुत्पादित करती है, बल्कि महिलाओं के आत्मसम्मान, शरीर–बोध और सामाजिक पहचान को भी प्रभावित करती है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मीडिया संस्कृति नारी की सामाजिक स्थिति, पहचान और सशक्तिकरण की दिशा को प्रभावित करने वाली एक निर्णायक शक्ति है। आवश्यकता इस बात की है कि मीडिया संस्थान लैंगिक संवेदनशीलता, नैतिक उत्तरदायित्व और समानता के सिद्धांतों को अपनाएँ, ताकि नारी को केवल उपभोक्तावादी दृष्टि से नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र, स्वायत्त और सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय एजेंट के रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, अनन्या. (2025). एल्गोरिदि्मक मीडिया संस्कृति और महिला कंटेंट–निर्माता, दृश्यता, श्रम और पहचान. नव–मीडिया अध्ययन, 7(1), 1–22
2. गिल, रोजालिंड (2024), जेंडर एंड द मीडिया, पॉलिटी प्रेस, पृ0 24
3. बटलर, जूडिथ (2024), जेंडर ट्रबल : नारीवाद और पहचान का विघटन रूटलेज, पृ0 146
4. चौधरी, नीलिमा (2023), सोशल मीडिया और नारीवादी प्रतिरोध : डिजिटल प्लेटफॉर्म पर लैंगिक संवाद और संघर्ष। भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा 58(2), 112–130.
5. मंजरी मिश्रा (2021), विज्ञापन उद्योग में स्त्री–शरीर का वस्तुकरण और उपभोक्तावाद, Journal of Media and Gender Studies, 9(2), 75–92.
6. जुबॉफ, शोशाना. (2019). द एज ऑफ सर्विलांस कैपिटलिज्म : द फाइट फॉर ए ह्यूमन फ्यूचर एट द न्यू फ्रंटियर ऑफ पावर, प्रोफाइल बुक्स, पृ0 11
7. यादव, सुषमा (2023), सोशल मीडिया में नारीवादी प्रतिरोध और लैंगिक संवादः एक तुलनात्मक अध्ययन, Journal of Gender and Media Studies, 10(1), 55–74.
8. केलनर, डग्लस. (2015). मीडिया संस्कृति : सांस्कृतिक अध्ययन, पहचान और राजनीति, रूटलेज, पृ0 67
9. फ्रेजर, नैंसी (2013), फॉर्चुन्स ऑफ फेमिनिज्म : राज्य–प्रबंधित पूँजीवाद से नवउदारवादी संकट तक, न्यू लेफ्ट रिव्यू, 79, 97–117.

◀◀ ▶▶

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिंगीय विभेद के आधार पर उनकी शिक्षा के प्रति उनके अभिभावकों की दृष्टिकोण का अध्ययन

डॉ. शारदा सिंह*

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है । स्त्री एवं पुरुष दोनों ही समाज रूपी गाड़ी के दो पहिए है तथा जीवन के हर क्षेत्र में दोनों की सहभागिता आवश्यक है। यदि पुरुष शिक्षित है और नारी अशिक्षित है तो यह गाड़ी सुचारू रूप से नहीं चल सकती।

समाज में परम्परागत रूप से महिलाओं को कमजोर माना जाता है और लैंगिक भिन्नता के कारण उसे शिक्षा से वंचित रखा जाता रहा है। जिससे उसका विकास बाधित हो जाता है। समाज में उसकी हर क्षेत्र में भागीदारी पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है। उसे निरीह, असक्षम एवं कमजोर मानकर उसकी सीमा रेखा घर की चारदीवारी तक ही सीमित कर दी जाती है।

लिंगीय विभेद से तात्पर्य है कि बालक तथा बालिकाओं के मध्य व्याप्त लैंगिक असमानता । लिंग सामाजिक सांस्कृतिक शब्द है। सामाजिक सन्दर्भमें लिंग - विभेद का अर्थ है- पुरूषों एवं महिलाओं के कार्यों और व्यवहारों को अलग-अलग परिभाषित करना। अपने सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं में लिंग पुरुषों और महिलाओं के बीच शक्ति कार्य का सम्बन्ध है। जहां पुरूष को महिला से श्रेष्ठ माना जाता है। इस प्रकार लिंग को मानव निर्मित सिद्धांत समझना चाहिए, जबकि सेक्स मानव की प्राकृतिक या जैविक विशेषता है। पुलिंग और स्त्रीलिंग एक जैविक तथ्य है। यदि इस तथ्य के साथ किसी प्रकार की असमानता जोड़ दी जाती है तो यह एक सामाजिक तथ्य बन जाता है, जिसे लिंगीय असमानता कहा जाता है। लिंग असमानता को सामान्य शब्दों में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेद भाव किया जाना ।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव सभ्यता का विकास शिक्षा के द्वारा ही सम्भव हुआ है शिक्षा मानव के विकास का मूल आधार है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिमार्जन किया जाता है, और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी भावी पीढ़ी को उच्च आदर्शो, अभीष्ट आशाओं, उत्कृष्ट आकांक्षाओं, सनातन मूल्यों, सतत विश्वासों, प्राचीन अन्धविश्वासी परम्पराओं से युक्त अपनी सांस्कृतिक धरोहर को हस्तान्तरित करता रहता है। शिक्षा बालक के हृदय में देश प्रेम, बलिदान व निहित स्वार्थो के त्याग की भावना को प्रज्जवलित करती है।)

आज इस इक्कीसवीं सदी में भी कुछ रूढ़िवादी विचारधाराएँ है जो भारतीय समाज में लिंग भेद के दृष्टिकोण के आधार पर बालक एवं बालिका की शिक्षा में अन्तर कर रहे है। जहाँ तक महिलाओं के सम्बन्ध में हमारे दृष्टिकोण का सवाल है तो हमारा समाज दोहरे-मानकों का एक ऐसा समाज है जहां हमारे विचार और उद्देश्य हमारे कार्यों से भिन्न है।

आपने कभी अपने आस-पास या पड़ोस में बेटी के जन्म के अक्सर पर ढोल-नगाड़े या शहनाइयां बजते देखा है, शायद नहीं। और देखा भी होगा तो कहीं इक्का दुक्का । वस्तुतः हम भारत के लोग 21 वी शताब्दी के भारतीय होने पर गर्व करते है, बेटा होने पर खुशी का जश्न मनाते है और अगर एक बेटी का जन्म हो जाय तो शान्त हो जाते है। लैंगिक असमानता के कारण बालिकाओं को समाज में, शिक्षा में तथा पालन-पोषण में बालकों

* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र, हंडिया पीजी कालेज, हंडिया

से निम्नतर स्थिति में रखा जाता है, जिससे वे पिछड़ जाती है। प्राचीन काल से ही यह अवधारणा प्रचलित रही है कि जीवित पुत्र का मुख देखने मात्र से ही नरक और कई पापों से मुक्ति मिल जाती है और बालिकाओं की प्रत्येक प्रकार से सुरक्षा करनी पड़ती है। अतः बालक श्रेष्ठ है और कुल का नाम आगे ले जाने और रौशन करने के लिये उत्तरदायी होने के कारण ही बालिकाओं की अपेक्षा प्रमुख है। किसी भी देश की उन्नति में उस देश की नारी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। नारी देश की संस्कृति धर्म, साहित्य, कला, ज्ञान, विज्ञान का स्तम्भ होती है। उसे शिक्षित बनाकर उसकी सृजनात्मक क्रियाशीलताओं को प्रबुद्ध और सम्मुन्नत बनाया जा सकता है।
सिल्वया वाल्बी के अनुसार -

"पितृसत्ता सामाजिक संरचना की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें पुरुष, महिलाओं पर अपना प्रभुत्व जमाता है, उसका दमन करता है और उसका शोषण करता है।"

भारतीय समाज में लिंग असमानता का मूल कारण इसकी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है। समाज में महिलाओं निम्न स्थिति होने के कुछ कारणों में अत्यधिक गरीबी और शिक्षा की कमी भी है। गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी महिलाएं कम वेतन पर घरेलू कार्य करने, वेश्यावृत्ति या प्रवासी मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिये मजबूर हो जाती है। लड़की को शिक्षित करना अभी भी एक बुरा निवेश माना जाता है, क्योंकि अभिभावकों द्वारा उन्हें परायी सम्पत्ति समझा जाता है। महिलाओं को खाने के लिये वही मिलता है जो परिवार के पुरुषों के खाने के बाद बच जाता अतः समुचित और पौष्टिक भोजन के अभाव में महिलाएं कई प्रकार के रोगों का शिकार हो जाती है।

असमानता के प्रकार :-

इसके निम्न प्रकार है-

मृत्यु दर असमानता ।
प्रासूतिक असमानता ।
मौलिक सुविधा असमानता ।
विशेष अवसर असमानता ।
व्यावसायिक असमानता ।
घरेलू असमानता ।

अभिभावकों के दृष्टिकोण

सामजिक क्षेत्र में नारी जाति सामाजिक सुधार की आधारशिला होती है। वह परिवार का सृजन, निर्माण करने वाली होती है। सबसे पहले नागरिकता की शिक्ष उसी के संरक्षण में मिलती है, यदि नारी शिक्षित नहीं होती है तो वह परिवार में रहकर नागरिकता का प्रसार करने का उत्तर दायित्व न्यायपूर्वक नहीं निभा सकती, और अपने दायित्व की पूर्ति वह तभी कर सकती है, जबकि वह शिक्षित हो । शिक्षित नारी सम्पूर्ण समाज को सुसंस्कृत बनाती है।

1947 ई० में भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी शिक्षा के विकास पर अत्यधिक ध्यान दिया गया। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में नारी शिक्षा की प्रगति पर विशेष ध्यान दिया गया है। भारतीय संविधान में भी प्रेषित किया गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म स्थान या उनमें से किसी आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। भारतीय स्त्री ने विविधि क्षेत्रों में मार्गदर्शन और नेतृत्व किया है- लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडू, एनीबेसेन्ट, कमला नेहरू, कस्तूरबा गांधी, इन्दिरा गांधी जैसी विदुषी महिलाओं ने युद्ध कौशल, सामाजिक सुधार, राजनैतिक सुधार और आर्थिक नियोजन में भारी योगदान दिया है।

आज स्त्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विजय की कहानियां लिख रही है। चिकित्सा, खेल-कूद, प्रशासनिक, अभियन्ता, सेना आदि में अपने नामों को स्वर्ण अक्षरों में लिख रही है। वर्तमान समाज आधुनिकता की दौड़ में

आगे चलते हुए भी कहीं-कहीं नारी और पुरूष के लिये अलग-अलग प्रकार के मापदण्ड निर्धारित करता है जैसे- बालिको के रहन सहन, शिक्ष आदि के लिये अलग मापदण्ड एवं बालकों के लिये अलग मापदण्ड । इसी प्रकार माता-पिता भी बालक-बालिकाओं पोषण शिक्षा एवं कैरियर के प्रति विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण रखते है। कुछ अभिभावकों की मानसिकता यही है कि लड़कियां पराया धन है अतः इन्हें प्राथमिक शिक्षा तथा गृहस्थी चलाने से अधिक शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी इस सोच के कारण बहुत सी लड़कियां शिक्षा से वंचित रह जाती है और यदि उन्हें प्राथमिक शिक्षा के द्वारा केवल साक्षर बना भी दिया जाता है तो माध्यमिक स्तर तक पहुंचने ही नहीं दिया जाता है।

अभिभावकों के दृष्टिकोण को प्रभावित करने वाले कारक

अभिभावकों की सोच रातों-रात नहीं बदलती; इसके पीछे कई सामाजिक-आर्थिक कारण होते हैं:

सामाजिक परंपराएँ: समाज में यह धारणा व्याप्त है कि बेटा वंश बढ़ाएगा और बुढ़ापे का सहारा बनेगा, जबकि बेटी दूसरे घर जाएगी।

आर्थिक स्थिति: कम आय वाले परिवारों में जब संसाधनों की कमी होती है, तो वे अक्सर लड़के की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं।

सुरक्षा की चिंता: माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के साथ होने वाली सुरक्षा संबंधी चिंताएं भी अभिभावकों को उन्हें घर से दूर या उच्च शिक्षा के लिए भेजने से रोकती हैं।

जागरूकता का अभाव: ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावकों को सरकारी योजनाओं (जैसे- बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ) की पूर्ण जानकारी न होना।

माध्यमिक स्तर पर प्रभाव

इस उम्र में किशोरों के मन में अपने करियर को लेकर कई सपने होते हैं। अभिभावकों के भेदभावपूर्ण रवैये का प्रभाव निम्नलिखित रूप में दिखता है:

विषयों का चयन: लड़कों को विज्ञान (Science) और गणित के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जबकि लड़कियों को अक्सर कला (Arts) या गृह विज्ञान लेने की सलाह दी जाती है।

संसाधनों का वितरण: ट्यूशन, कोचिंग और तकनीकी उपकरणों (लैपटॉप, मोबाइल) की उपलब्धता में लड़कों को वरीयता दी जाती है।

आत्मविश्वास में कमी: जब बालिकाओं को समान अवसर नहीं मिलते, तो उनके आत्म-सम्मान और शैक्षणिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

बदलते परिवेश में सकारात्मक परिवर्तन

हालाँकि चुनौतियाँ बड़ी हैं, लेकिन आधुनिक भारत में बदलाव की लहर भी दिख रही है। मध्यम और उच्च वर्गीय परिवारों के साथ-साथ अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी अभिभावक अपनी बेटियों को डॉक्टर, इंजीनियर और अधिकारी बनते देखना चाहते हैं। डिजिटल क्रांति और महिला रोल मॉडल्स (जैसे- खेल और राजनीति में) ने अभिभावकों की सोच को लचीला बनाया है।

निष्कर्ष और सुझाव

अभिभावकों के दृष्टिकोण में बदलाव लाना केवल व्यक्तिगत जिम्मेदारी नहीं, बल्कि एक सामाजिक आवश्यकता है। शिक्षा के प्रति लिंगीय विभेद को समाप्त करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:

- अभिभावकों के लिए काउंसलिंग सत्र आयोजित करना।
- बालिकाओं के लिए व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा को सुलभ बनाना।
- समाज में "समान शिक्षा, समान अधिकार" के संदेश को प्रसारित करना।

अतः आधुनिक छात्राओं को पुरूषों के समान विकास की सुविधाएं और अवसर देकर प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व का शिक्षण देना चाहिए, जिससे वे योग्य अध्यापक, योग्य चिकित्सक, और समाज सुधारक बनकर राष्ट्र

की सेवा कर सके।जब तक माता-पिता अपनी संतानों को केवल 'लिंग' के आधार पर नहीं, बल्कि उनकी 'क्षमता' के आधार पर देखेंगे, तभी देश का वास्तविक विकास संभव है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

कुमार शिव (2015) - स्त्रियों की वृत्तिक शिक्षा के प्रति ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों की अभिवृत्तियो का अध्ययन ।

करलिंगर एफ॰ एन॰ (1966) - फाउंडेशन आफ विहेवियर रिसर्च पृष्ठ संख्या 72 ।

कपिल एच॰ के॰ (2012) - अनुसंधान विधिया, एच॰पी॰ भार्गव बुक हाउस, कचहरी रोड, आगरा ।

रस्तोगी के॰जी॰ - भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ, रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ |

यादव नीरज कुमार (2008-09) - उच्च शिक्षा के प्रति शहरी एवं ग्रामीण माता-पिता की अभिवृत्तिका तुलनात्मक अध्ययन

लाल, रमन बिहारी - भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएं, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ ।

राय प्रो॰ बी॰ एन॰ - तुलनात्मक शिक्षा, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड लखनऊ ।

जैन संजय (2018) - बेटे और बेटी से भेदभाव, कोयम्बटूर

पाठक पी॰डी - भारतीय शिक्षा का इतिहास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

अहमद इकबाल (2004-05) - मऊ जनपद में हिन्दू तथा मुस्लिम माता- पिता का बालिका शिक्षा के प्रति अभिवृत्तिका तुलनात्मक अध्ययन।

अग्रवाल, जे. सी. (2010). *भारत में शिक्षा का विकास और चुनौतियाँ.* विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

पाण्डेय, रामशकल (2012). *उभरते भारतीय समाज में शिक्षा.* अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

NFHS-5 (2019-21). *राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट.* स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।

भारतीय आधुनिक शिक्षा (Journal). NCERT द्वारा प्रकाशित (विभिन्न अंक - लिंगीय समानता पर केंद्रित)।

योजना पत्रिका (Yojana). "महिला सशक्तिकरण और शिक्षा" विशेषांक, सूचना और प्रसारण मंत्रालय।

www. hindi kiduniya.com/social/Org / 2018:- भारत में लिंगीय असमानता।

राष्ट्र निर्माण में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचारों की भूमिका

सनी कुमार*

सारांश

किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए आवश्यक है कि उसमें उसमें सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक विकास साथ–साथ होना चाहिए। इसमें सामाजिक और आर्थिक विकास के बिना राजीनीतिक विकास सम्भव नही हो पायेगा। संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भारत में सामजिक न्याय और राजनीतिक समता स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। सामान्यतः उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारों पर कार्य किया गया लेकिन उनके आर्थिक विचारों पर इतना ध्यान नही दिया गया। जबकि अम्बेडकर ने अपना ज्यादातर अध्ययन अर्थशास्त्र में ही किया था। उनका मानना था कि भारत में वृहत स्तर पर औद्योगिक कार्य किया जाना चाहिए। भारतीयो की परम्परागत रूप से कृषि कार्यों पर निर्भरता को कम करना चाहिए। उन्होनें छोटी जोतों को मिलाकर संयुक्त कृषि का विचार दिया। राष्ट्रीय स्तर पर तकनीकि और वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति करने के लिए उन्होनें भारतीय छात्रों को परम्परागत सामजिक विषयों के साथ आधुनिक तकनीकि विषयों का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया ताकि छात्र भारतीय समस्याओं का वैज्ञानिक हल निकाल सके और राष्ट्र निर्माण के कार्य को आगे बढ़ा सके। अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण संसाधनों को राज्य के पास रखने के कहां तथा राष्ट्रीय एकीकरण एवं और राज्य समाजवादकी विचारधारा को आगे बढ़ाया। अम्बेडकर का दृष्टिकोण वैज्ञानिक और तार्किक है। उन्होनें भूमि सुधार और सामूहिक खेती करने पर बल दिया ताकि भूमि का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके। उन्होने श्रमिक कल्याण और श्रम सुधार पर बल दिया ताकि समाज के अंतिम व्यक्ति को मुख्य धारा में लाया जा सकें। उन्होनें समाज के गरीब, वंचित व पिछड़े वर्ग के कल्याण हेतु सदैव ही सकारात्मक पक्ष रखा। वे भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधार करना चाहते थे। ग्रामीण समाज में गरीबी और भुखमरी को दूर करने के लिए उन्होनें ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच की दूरी कम करने पर जोर दिया। उनका मानना था कि ग्रामीणों में व्यापत जातिवाद भी ग्रामीण गरीबी के लिए उत्तरदायी रहा है। उन्होने समान कार्य के लिए समान वेतन और काम के घंटे निश्चित करने पर बल दिया। अम्बेडकर ने दामोदर घाटी परियोजना जैसी बहुउददेशीय परियोजना के माध्यम से देश के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने पर बल दिया। रेल परिवहन, प्राकृतिक संसाधनों को केंद्रीय सूची में सम्मिलित करने पर बल दिया। अम्बेडकर ने सामाजिक–आर्थिक समानता पर बल दिया ताकि समाज में समानता को स्थापित किया जा सके। उन्होने अपने शोध कार्य और विभिन्न पुस्तकों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए मौद्रिक और वित्तीय विचार दिए। उन्होने स्वर्ण मानक के स्थान पर मुद्रा मानक को स्थिरता प्रदान करने पर बल दिया। प्रस्तुत शोध में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचारों का अध्ययन किया गया जिसमें उनके मौद्रिक, वित्तीय और ग्रामीण विकास संबंधी विचारों को प्रमुखता से अध्ययन किया गया।

मूल शब्द– आर्थिक न्याय व समानता, मौद्रिक नीति, वित्तीय नीति, वितरण, दलित, महिला, ग्रामीण विकास

प्रस्तावना

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने जीवन पर्यंत संघर्ष के आधार पर अपने लक्ष्यों को प्राप्त किया। उनका जीवन मानवतावादी विचारों से प्रभावित है। जब तक समाज के कमजोर वर्गों को आर्थिक स्वतंत्रता और समान अवसर नहीं मिलते, तब तक कोई भी समाज प्रगति नहीं कर सकता है। अम्बेडकर का विचार था कि समाज में विषमता है। समाज में सभी के पास आर्थिक संसाधनों में भी विषमता देखने को मिलती है। उस समय भारत में आर्थिक संसाधनों पर विशेषतः कुछ ही लोगों का एकाधिकार स्थापित था और समाज का एक बड़ा वर्ग इससे वंचित था। एक के पास सभी प्रकार की आर्थिक सुविधाएं थी वहीं दूसरे के पास जीवन के लिए आवश्यक मौलिक सुविधाएं भी नही थी। यह सब इसलिए था क्योकि संसाधनों का वितरण असमानता

* शोधार्थी, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
Email ID - skumarhapur5@gmail.com, Mob. : 9897494430

पर आधारित था। अम्बेडकर ने इस व्यवस्था में सुधार के लिए अपने वैज्ञानिक और व्यावहारिक तर्क दिए। उनका मानना था कि समाज में विषमता को समाप्त करके समता लाने के लिए आवश्यक है कि भारत में सभी प्रकार की चल और अचल निजी सम्पत्ति के अधिकार का पूर्णतः उन्मूलन होना चाहिए।[1] उन्होने सदैव ही राष्ट्र निर्माण में एक समतामूलक और समावेशी विकास को प्राथमिकता दी तथा समाज के सभी वर्गो के कल्याण के विषय में चिंतन किया। वे एक युगपुरुष थे जिन्होने अपने औजस्वी विचारों से राष्ट्रीय नीति को प्रभावित किया तथा उसे गतिमान बनाने का कार्य किया। अम्बेडकर के विचारों में उनका आर्थिक दूरदर्शी है और तत्कालीन समस्याओं को तो ध्यान में रखा ही जाता है साथ ही भविषय के लिए भी योजना तैयार करता है। उनका विचार था कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति और समृद्धि की नीव के निम्नलिखित आधार है जैसे विशुद्ध घरेलू जीवन व्यापार में ईमानदारी, नैतिकता व लोकहित के सर्वोच्च स्तर, साधारण जीवन, साहस, सत्य तथा निर्णयों में तर्क और उदारता का निश्चित दर्शन हो जिसमें चरित्र और बौद्धिक प्रतिभा का समान योगदान हो। इससे वर्तमान भारतीय समाज को तो प्रेरणा मिलगी ही साथ ही भविष्य के लिए भी प्रेरणा स्त्रोत के रूप में कार्य करेगी।[2] अम्बेडकर के आर्थिक विचारों को उनके वित्तीय विचार, मौद्रिक विचार, राज्य समाजवाद, ग्रामीण अर्थव्यवस्था पुर्ननिर्माण तो करता ही साथ ही उनका राज्य समाजवाद व सामाजिक न्याय की अवधारणा एक लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना भी करता है। अम्बेडकर ने भारतीय विकास और प्रगति के संबंध में अपने दूदर्शी विचार प्रस्तुत किए तथा सैद्धांतिक दृष्टिकोण के साथ पुर्नसंचरना का कार्य किया। उन्होनें मार्च, 1947 में संविधान सभा में अल्पसंख्यक और दलित वर्ग संबंधी सलाहाकार समिति के "प्रान्त और अल्पसंख्यक" शीर्षक से देश के लिए आर्थिक विचार दृष्टिकोण में अपने राज्य समाजवाद की अवधारणा का विचार प्रस्तुत किया। उनके इसके व्यावहारिक और सैद्धांतिक लाभ बताए। अम्बेडकर संवैधानिक विकास में विश्वास करते थे। इसके क्रियांवयन को विधानमंडल के उपर नही छोड़ा गया। क्योकि उनका मानना था कि यदि यह कार्य विधानमंडल के उपर छोड़ दिया तो हो सकता है भविष्य में व्यक्तिगत लाभ को देखते हुए यह लागू ही ना हो पाए। जिससे इसका उददेश्य अधूरा रह जाएगा और यह योजना अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर पाएगी। अम्बेडकर अपनी योजनाओं को केवल सैद्धांतिक रूप ही नही दिया अपितु उसे लागू करवाने का भी कार्य किया।[3] उन्होने प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग कर राष्ट्र निर्माण में उनका सही दोहन कर विकास कार्य करने पर बल दिया। उनका मानना था कि ईश्वर सभी जानवरों सहित सभी जीवधारियों में बसा है लेकिन हम अपने ही देश के नागरिकों के साथ भेदभाव का व्यवहार करते है।[4] अम्बेडकर के विचारों में नैतिकता और समता का समावेशन दिखता है जो मानवीय विकास को प्रमुखता से प्रेरित करता है। अम्बेडकर ने भारत में श्रम सुधार और श्रमिक कल्याण कार्य, ग्रामीण क्षेत्र के लघु जोत समस्या के संबंध में भूमि सुधार द्वारा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार, भारत में राजनीतिक लोकतंत्र से पहले सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र का सिद्धांत, कमजोर और पीड़ित वर्गों को सामाजिक व आर्थिक न्याय प्रदान करना, समाज में आर्थिक पिछड़ापन को दूर करना, भेदभावपूर्ण कर व्यवस्था का को समाप्त करना, ग्रामीण क्षेत्रों का शहरीकरण कर विकास कार्य को सभी तक पहुचांना, देश में अवसंरचनात्मक विकास और वृहत स्तर पर औद्योगिकीकरण कर सभी को रोजगार प्रदान करना, संसाधन वितरण में लोककल्याणकारी राज्य सिद्धांत अपनाना, समाज स्थापित करने के लिए राज्य समाजवाद की अवधारणा के द्वारा राज्य का अधिकार क्षेत्र में वृद्धि करना, प्राकृतिक जलसंसाधन नीति बनाना, देश में रेलवे और नदियों को केन्दीय विषय में सम्मिलित करना, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और जाति प्रथा के आर्थिक आयाम को समझना, वंचितों की आर्थिक समस्याओं को समझना, प्रबंधन में श्रम कानूनों में एकरूपता लाना, सामाजिक सुरक्षा, बीमा, विद्युत ऊर्जा का विकास, ,खनिज संसाधन संबंधी नीति, कृषि उत्पादन तथा खाद्य सब्सिडी आदि संबंधी विचार देकर एक आधुनिक भारत की नीव रखने का प्रयास किया।

---

[1] डॉ. अमरनाथ पासवान (संपादित), हाशिये का समाज एवं डॉ.आम्बेडकर, टाइम्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2015, पृ. 22

[2] बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्ग्मय, खण्ड–1, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1993, पृ. 268

[3] बी.आर. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, महाराष्ट सरकार, खण्ड 1, 2021, पृष्ठ 274 –275

[4] डॉ. कृष्णगोपाल, बाबा साहब व्यक्ति और विचार, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ 19.

वित्तीय विचार

अम्बेडकर ने अपना ज्यादातर अध्ययन कार्य अर्थशास्त्र में किया था। अम्बेडकर के आर्थिक विचार उदारवाद और मानवतावादी दर्शन से प्रभावित रहे है। वे समाज में राजनीतिक सुधार से पहले सामाजिक और आर्थिक सुधार करना चाहते है। अम्बेडकर ने अपना आर्थिक दृष्टिकोण लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने के उददेश्य रखा। अर्थशास्त्र की दुनिया में अम्बेडकर को एक बड़ी प्रसिद्धि उनके शोध कार्यों द्वारा दिये गए नवीन विचारों से प्राप्त हुई है।[5] किसी भी राष्ट्र में उसके विकास को सही दिशा प्रदान करने के लिए उसमें सही व दूरदर्शी वित्तीय नीति का होना आवश्यक है। वित्तीय नीति के माध्यम से ही किसी भी राष्ट्र की प्रगतिशीलता को नापा जा सकता है। इसी के माध्यम से ही कर संग्रह, सरकारी व्यय और निवेश के माध्यम से आर्थिक स्थिरता, विकास और गरीबी उन्मूलन कार्य सुनिश्चित होता है। भारत में वित्तीय नीति के द्वारा राजस्व और सरकारी व्यय में संतुलन बनता है जोकि किसी भी देश के अवसंचनात्मक विकास के लिए अपरिहार्य है। इसमें शिक्षा, स्वास्थय, निर्माण कार्य और विकास के पहलुओं को शामिल किया जाता है। वित्तीय नीति यदि सही है तो इसका प्रभाव वर्तमान के साथ भविष्य पर भी पड़ता है। अम्बेडकर राज्य को सही और उपयोगी वित्तीय नीति बनाने पर जोर देते है। उनके विचारों को उनके शोध कार्य आदि के माध्यम से भी देखा जा सकता हैं। उनके वित्तीय विचारों को उनके कोलंबिया विश्वविद्यालय, अमेरिका में से एम.ए. की उपाधि शीर्षक ''ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रशासन एवं वित्त प्रबंध'' उपाधि तथा पीएचडी का शीर्षक ''ब्रिटिश भारत में प्रादेशिक वित्त का विकास'' शीर्षक के माध्यम से देखा जा सकता है। अपनी पुस्तक ''द इवाल्यूशन ऑफ प्राविंशियल फाइनेंस इन इंडिया'' में उन्होनें वित्तीय विकंद्रीकरण पर विचार स्पष्ट किए।[6] उन्होनें आर्थिक आधार पर तार्किक व तथ्यात्मक रूप से ब्रिटिश गर्वन्मेंट की वित्तीय नीति, की आलोचना की। उन्होने सैद्धांतिक आधार पर प्रायोगिक विधि से सिद्ध किया कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से अधिक कर वसूला तथा भारत को बहुत कम सुविधाएं उपलबध कराई। अपने एम.ए. के शोध प्रबन्ध में 1792 से 1858 तक कंपनी का प्रशासन और वित्त प्रबंध का अध्ययन किया। कंपनी ने अपनी द्विस्तरीय प्रणाली में 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' को कार्यभार सौपा गया तथा इसके पर्यवेक्षण के लिए 'बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल' जो कंपनी पर नियंत्रण बनाये रखती, नामक समीति का गठन किया। उन्होने बताया कि कैसे कंपनी राजस्व से जो भी आय प्राप्त होती उसे अपने शेयरधारकों को लाभांश देने के बहाने इंग्लैण्ड भेज देती और यहीं नही कंपनी भारत को आधार बनाकर ब्रिटिश सरकार से ऋण लेती। इससे कंपनी दो तरह के कर्ज लेती जिसमें प्रथम भारतीय ऋण भारत मे ही हुड्डियां देकर लेती थी और देशी बाण्ड ऋण इंग्लैण्ड में बाण्ड जारी करके लिया जाता था। कंपनी भेदभावपूर्ण तरीके से कंपनी ब्रिटिश सरकार से कम ऋण लेती थी और भारत बाण्ड के माध्यम से ज्यादा ऋण लेती थी जिसका सारा बोझ पूरी तरह से भारतीय राजस्व पर पड़ता था। यह पूर्णतः भेदभाव पूर्ण दोषपूर्ण दोहरी नीति थी जिसमें ब्रिटिश अपना बचाव कर लेती थी। इसी के साथ कंपनी भारतीयों पर अत्याधिक भूमि कर लगाती थी जिसका पूरा प्रभाव भारतीय कृषकों पर पड़ता था।[7] किसानों से ऊची दर पर लगाया जाने वाले कर न केवल अत्याधिक था बल्कि अलग अलग प्रांतों में उसकी दर भी अलग अलग थी। अम्बेडकर ने बताया कि जहॉ इंग्लैण्ड में लगान का अनुपात 5 से 20 प्रतिशत बताया वहीं भारत में कहीं कहीं 80 से 90 प्रतिशत तक था।

मौद्रिक नीति

किसी भी देश में सही मौद्रिक नीति का होना आवश्यक है। मौद्रिक नीति के द्वारा ही देश में मूल्य स्थिरता बनाए रखा जाता है। मुद्रास्फीतिको नियंत्रित करने और सतत आर्थिक विकास को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसके द्वारा ही देश में ब्याज दर और मुद्रा आपूर्ति को प्रबंधित करके निवेश, रोजगार और वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित किया जाता है। समय समय पर देश में महॅगाई में कमी और वृद्धि होती रहती है। जिससे देश के आर्थिक विकास में भी अस्थिरता आती है और लोगों की क्रय शक्ति में भी बदलाव देखने को प्राप्त होता है। मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने से वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य स्थिर रहते है। वर्ष 1866 में भारत में स्थानीय नगर पालिकाओं और स्थानीय संस्थाओं केद पास विकास कार्य हेतु

[5] डॉ. कृष्णगोपाल, बाबा साहब व्यक्ति और विचार, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ 22

[6] भगवान दास,दी स्पोक ऑफ अम्बेडकर, खंड 01, बुद्धिस्ट पब्लिशिंग हाउस, जालंधर, पृ 115

[7] डॉ. रामवचन राव, : "डॉ. अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सागर प्रकाशन, 1996, पृष्ठ 268

बजट का अभाव था जिससे भारत में स्थानीय स्तर पर कार्य करने में परेशानियों का सामना करना पड़ा।[8] आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि संतुलित मुद्रा आपूर्ति के माध्यम से देश में निवेश, बचत और उपभोग को बढ़ाया जाए जोकि आर्थिक वृद्धि के लिए अनिवार्य शर्त है। देश में रोजगार सर्जन करने के लिए आवश्यक है कि मौद्रिक नीति के द्वारा ब्याज दरों को कम करके व्यापार और उद्योग को बढ़ावा दिया जाए। एक स्थिर वित्तीय ढाचा प्रदान करने के लिए विदेशी विनिमय दरों को संतुलित रखा जाए और वित्तीय संकट को कम किया जाए। साथ ही उत्पादक क्षेत्रों जैसे कृषि और उद्योग से जुड़े हुए नागरिकों को सही समय पर कर्ज उपलब्ध कराके इन क्षेत्रों का समुचित विकास किया। किसी भी देश सही मौद्रिक नीति से विकास को सही दिशा प्रदान की जा सकती हैं। भारत में बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अपने मौद्रिक विचार 'लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स' में डी.एस.सी. की 1921 में उपाधि शीर्षक 'रुपए की समस्याः उद्गम तथा समाधान' से व्यक्त किए। उन्होने तत्कालीन मुद्रा प्रबंधन विनियमन और 1893 के सुधारों पर असहमति व्यक्त की।[9] उनका मानना था कि मुद्रा मूल्य को समान स्तर पर स्थिर रखने के लिए मॉग के अनुसार ही आपूर्ति नियंत्रण की जानी चाहिए। भारतीय मुद्रा प्रणाली पर जलवायु, खपत और वितरण का प्रभाव पड़ता है। यह गर्मी में सुस्त और सर्दी में अधिक हो जाती है। उनका विचार था कि मुद्रा प्रणाली में सन्तुलन और स्थिरता को बनाए रखने के लिए इसे मौसम के अनुसार संचालित करना चाहिए। वार्षिक आधार परिवर्तन को धातु से तथा मौसमी आधार के परिवर्तन को कागजी मुद्रा में परिवर्तित किया जाना चाहिए। उस समय भारतीय मुद्रा प्रणाली और ब्रिटिश मुद्रा प्रणाली में अंतर था जिसके कारण भारत को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता था। उनका विचार था कि पुरानी मुद्रा को समाप्त किया जाए और स्वर्ण आधारित नई मुद्रा प्रचलन करने पर जोर दिया। उनका मानना था कि इससे भारत को आर्थिक लाभ होगा।[10] अनियमित बटट्ा दर से मुदा प्रणाली पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता हैं जैसे कि ब्रिटेन में बैंक कर्ज चेक से उपलब्ध कराये जाते है वहीं भारत में बैंक कर्ज मुद्रा से उपलब्ध कराये जाते है। इसका सीधा प्रभाव मुद्रा आपुर्ति पर होता है। बटट्ा दर बढ़ने से मुनाफा नष्ट होता है और बटट्ा घटने से मुनाफा बढ़ता हैं इसका सीधा प्रभाव उद्यमियों पर रहता है जहां वर्ष में एक बार कर्ज लेना पड़ता है। व्यापार जोखिम बढ़ने से सीधा प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। ब्रिटिश सरकार की अनदेखी के कारण व्यापार और मुद्रा प्रणाली में उतार चढ़ाव देखा गया। रुपये के मान में उतार चढ़ाव बहुत ही ज्यादा नुकसान दायक है। इंग्लैण्ड में वस्तुओं की कीमते घटती है और वहीं भारत में इसका उल्टा कीमते बढ़ती है। अम्बेडकर का मानना था कि 'स्वर्ण विनिमय मान प्रणाली' दो धारी तलवार है। ज्यादा मुद्रा का निर्माण करने से देश में महँगाई तथा मुद्रास्फिति आ सकती है। इसका नकारात्मक प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। उनका मानना था कि मुद्रा किसी भी व्यापार के लिए आवश्यक है। कोई भी व्यापार बिना मुद्रा के विकास नही कर सकता है। व्यापार स्थापित करने के लिए भी मुद्रा की आवश्यकता होती है और उसका लागत मूल्य और विक्रय मूल्य से ही व्यापार लाभ और व्यापार घाटा तय होता है।[11] अम्बेडकर मुद्रा पर पूर्ण नियंत्रण बनाये रखना चाहते थे। वर्तमान रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना के लिए भी उन्होनें ही विचार दिए थे। हिल्टन यंग कमीशन के समक्ष 1925 में बयान दिया।

ग्रामीण विकास

भारत एक कृषि भूमि वाला देश है। अम्बेडकर का मानना था कि भारत में गांवो की अर्थव्यवस्था में सुधार किए बिना भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं किया जा सकता है। जब तक आर्थिक सुधार नही हो सकते तब तक भारत से सामाजिक भेदभाव भी समाप्त नही किया जा सकता है। अम्बेडकर ने कृषि क्षेत्र में नई तकनीक उपयोग करने का विचार दिया ताकि उत्पादन कार्य को बढ़ाया जा सके और ग्रामीण आजीवीका में वृद्धि की जा सके। इसी के साथ उन्होनें भूमि सुधार पर भी बल दिया।[12] यहां की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण समाज से ही संबंध रखती है। ग्रामीण समाज में अशिक्षा, मौसमी बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी, खराब स्वास्थय और मुद्रा का अभाव मुख्य चुनौतियों के रूप में सामने आती है। अम्बेडकर का मानना

---

[8] बीआर अम्बेडकर, दी प्राब्लम आफ रूपी : इट्स आरीजिन एंड साल्युशन, पीएस किंग्स, लंडन, 1923, पृ 112

[9] बी.आर. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, महाराष्ट्र सरकार, खण्ड 1, 1979, पृष्ठ 115

[10] बी आर अम्बेडकर, स्टेट्स एंड माइनोरिटीस, आल इंडिया सेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन, 1947, पृ 15

[11] डी आर जाटव, भीमराव अम्बेडकर का समाज दर्शन, समता साहित्य सदन, 1966, पृ 15–16

[12] आर सिंह, भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक चिंतन, जोधपुर, 1999, पृ 41

था ग्रामीण समाज में जाति प्रथा और सामाजिक भेदभाव के ग्रामीण वर्ग की आर्थिक स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव ही देखने को प्राप्त हुआ है। देश में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग सदैव ही अपने स्वार्थसिद्धी में लगा रहता है। अम्बेडकर का मानना था कि पूंजीपति वर्ग को केवल अपने स्वार्थ को सिद्ध करने का प्रयास नही करना चाहिए बल्कि देश के अन्य कमजोर वर्गों का विकास करने पर ध्यान देना चाहिए। ताकि सभी को मुख्य धारा में लाया जा सके और देश में गरीबी और पिछड़ेपन को न्यूनतम किया जा सके।[13] उन्होनें ग्रामीण श्रमिको को अधिकाधिक प्रशिक्षित होकर शहरी क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। वे भारत में कृषि पर निर्भरता को कम करना चाहते थे। उन्होनें गांवों को शहरों से जोड़ने के लिए सुझाव दिया। गांवों में स्कूल व कालेज खोलकर ग्रामीण समाज को शिक्षा से जोड़ना चाहिए ताकि लोग अपने अधिकारों को जान सकें। देश की आबादी का बड़ा भाग कृषि कार्य पर ही निर्भर था जिसके कारण सभी को समान रूप से रोजगार नही प्राप्त हो पाता था। रोजगार और शिक्षा के अभाव भारत में अधिकांश मानव बल अनउपयोगी ही रह जाता और इसका प्रभाव कुल राष्ट्रीय आय पर भी पड़ता। उनका मानना था कि भारत में कृषि संबंधी समस्याओं के समुचित निराकरण के लिए आवश्यक है कि जनसंख्या दवाब को देखते हुए औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया जाए। इससे कृषि पर तो निर्भता कम होगी ही साथ ही रोजगार के साधन भी बढ़ेंगे। इससे देश में निर्माण कार्य में भी गति आएगी।[14] अम्बेडकर ने श्रमिकों की समस्या को वैचारिक और वैज्ञानिक दोनों तरह से समझने का प्रयास किया तथा उनके सुधार के लिए कार्य किया। हालांकि उस समय अन्य राजनेता भी श्रमिक वर्ग की राजनीति करते थे लेकिन उनका उददेश्य केवल श्रमिक वर्ग की चुनाव आदि के समय समर्थन प्राप्त करना था। वे श्रमिक समस्या को बनाए रखना चाहते थे। उन्होनें बताया कि तत्कालीन श्रमिक नेतृत्व कर्ताओं का उददेश्य केवल राजनीतिक क्रांति करना था नाकि श्रमिक कल्याण करना। अम्बेडकर श्रमिकों के जीवन में राजनीतिक परिवर्तन के साथ सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन करना भी चाहते थे।[15] श्रमिकों के तवरित विकास करने के लिए आवश्यक है कि एक योजनाबद्ध कार्य किया जाए। नीति निर्माण में सभीं वर्गों का ध्यान रखा जाए ताकि भारत के विकास में कोई समाज पीछे न रह जाए। इससे सामाजिक और आर्थिक असमानता दोनों तरह से कम होगी। अम्बेडकर ने भारतीय समाज में वंचितों की दशा सुधारने के लिए बीमा, उद्योग एवं कृषि क्षेत्रों में राज्य के स्वामित्व का सुझाव दिया।[16] वे आधुनिकता को समर्थन करते थे। आमतौर पर ज्यादातर इकनामिस्ट का सुझाव था कि लेबर कास्ट को कम करके औद्योगिक जगत को स्थापित किया जा सकता है जिससे कि भारत में अवसंरचनात्मक विकास हो सके। अम्बेडकर के विचार उनके विपरित थे क्योकि उनका मानना था कि समाज के बड़े वर्ग को आर्थिक दोहन करके विकास नहीं विनाश ही हो सकता है। इससे केवल पुंजीपति वर्ग को ही लाभ होंगा। उन्होनें अपने राज्य समाजवाद की अवधारणा के अन्तर्गत राज्य को भूमि को अपने नियंत्रण में लेकर बिखरी व छोटी जोतों को संग्रह करके बड़ी जोतों का रूप दिया जाए। बिखरी हुई जोतों के कारण कृषि कार्य योजनाबद्ध नही हो पाता हैं जिससे कृषि कार्य के लागत मूल्य पर तो प्रभाव पड़ता ही साथ ही उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में बहुत से अर्थशास्त्रियों ने सुझाव दिए उनमें डॉ अम्बेडकर के विचार भी स्पष्ट दिखाई पड़ते है। समय समय पर अपने लेखों और वकत्वय के माध्यम से उन्होने भारत में सामूहिक कृषि का प्रस्ताव दिया तथा राज्य द्वारा अधिकाधिक जोत भूमि का अधिग्रहण करने का प्रस्ताव रखा।[17] उन्होनें गांवों में बिमारियों को कम करने के लिए सामुदायिक स्वास्थय केंद्र स्थापित करने पर जोर दिया। गांवों में व्यापत जातिवाद और सामाजिक मतभेद को देखते हुए पंचायती राज व्यवस्था का विरोध किया। उन्होनें बंधुआ मजदूरी का न केवल अपने लेखन और औजस्वी भाषणों के माध्यम से विरोध किया अपितु विधानमंडल और सार्वजनिक कानून के माध्यम से भी महार वतन प्रणाली, खौती व्यवस्था का विरोध किया। उन्होने बताया कि दीर्घकाल से ही सांमतों, जमीदारों और भू स्वामियों द्वारा गरीब और मजदूर वर्ग का जातिप्रथा और सामाजिक भेदभाव के आधार पर शोषण होता रहा हैं। यह शोषण शारीरिक और मानषिक दोनों तरह का होता है। समाज में विषमता और

---

[13] एन.जाधव, डॉ अम्बेडकर : आर्थिक विचार एवं दर्शन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ 136

[14] केपी भटनागर, हिस्ट्री आफ इकोनोमिक थाट्स, कृष्णा प्रकाशन, 1947, पृ 280

[15] बी आर अम्बेडकर, स्टेट्स एंड माइनोरिटीस, आल इंडिया सेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन, 1947, पृ 31

[16] एन.जाधव, डॉ अम्बेडकर : आर्थिक विचार एवं दर्शन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ 145

[17] बी.आर. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, महाराष्ट सरकार, खण्ड 1, 2021, पृष्ठ 275–76

शौषण को समाप्त करने के लिए अम्बेडकर भूमि का पुनर्वितरण आर्थिक न्याय के आधार पर करना चाहते थे। ताकि सभी अपना विकास कर सके।[18] भारत में प्राकृतिक संसाधनों का प्रकृति का वरदान दिखायी देता है। यहां का अधिकांश भूभाग प्राकृतिक संसाधनों से भरा हुआ हैं। वे एक नए आधुनिक समाज का निर्माण तो करना चाहते थे ही थे साथ ही सतत् विकास के लिए बल देते थे। भारत में प्राकृतिक संसाधनों का समावेशी रूप से आर्थिक दोहन होना चाहिए। केन्द्र को ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण करना चाहिए जिससे कि स्थानीय व्यापारी और राज्य सरकारे अपने तात्कालिक लाभ के लिए प्राकृतिक संसाधनों का गलत तरह से दोहन न कर सके। प्राकृतिक आवरण को किसी भी प्रकार की क्षति न पहुचे। उनके विचारों में एक समतामूलक एवं समावेशी विकास की झलक दिखायी देती है।

उपसंहार

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचारों में आधुनिक भारत की नीव दिखायी पड़ती है। उन्होनें भारतीय आर्थिक चिंतन को मानवीय दृष्टिकोण देने का प्रयास किया तथा उसमें आर्थिक न्याय को शामिल किया। उनका चिंतन उच्च कोटि का है जिसमें वर्तमान समस्याओं को तो ध्यान में रखा ही जाता है, साथ ही भविष्य की रूपरेखा को भी अवलोकित किया जाता है। उनके आर्थिक विकास संबंधी विचार मानवतावाद और लोकतंत्र से प्रभावित है जो एक समतामूलक और समावेशी विकास की अवधारणा पर आधारित है। वे राजनीतिक लोकतंत्र से पहले सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र को लाना चाहते थे। उन्होने भारत में सामाजिक न्याय की नीव रखी जिसमें सभी को बिना किसी भेदभाव के सभी प्रकार के अवसर दिए जाते है। उनके चिंतन में ग्रामीण और शहरी दोनों समाज की समस्याओं को निराकरण समाहित है। वे भारत में ग्राम और शहरों के बीच की दूरी को कम करना चाहते है। अम्बेडकर ने अपनी सामाजिक न्याय की अवधारणा को न केवल सैद्धांतिक रूप प्रदान किया अपितु उसे संवैधानिक रूप भी प्रदान किया। वे भारत में श्रमिकों का श्रम कल्याण और श्रम सुधार के माध्यम से मौलिक अधिकार और सामाजिक न्याय प्रदान करना चाहते है। उन्होनें श्रमिकों के कार्य के घंटे निश्चित करके उनके शारीरिक और मानषिक शौषण को रोकने का प्रयास किया है। उन्होनें श्रमिकों को आधुनिक तकनीकि कौशल प्रदान करने का प्रयास किया ताकि भारत में औद्योगिक विकास में नई विद्या को जोड़ा जा सके। अम्बेडकर महिलाओं की प्रगति को किसी भी देश की प्रगति और विकास से नापते थे। अम्बेडकर महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन देने के भारतीय संविधान के भाग 4 में नीति निदेशक तत्वों में शामिल करने का कार्य किया। उन्होने महिलाओं की शिक्षा पर जोर ताकि वे भी भारत के आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान कर सके। अम्बेडकर बहुत ही दूरदर्शी दृष्टिकोण रखते थे। वे वैचारिक रूप से सदैव ही आधुनिक और वैज्ञानिक तर्क रखते थें। उन्होने अपने वित्तीय विचारों में बताया कि कैसे ब्रिटिश सरकार की दोषपूर्ण वित्तीय नीति के कारण भारत को समय समय पर आर्थिक नुकशान उठाना पड़ा। कमजोर वित्तीय नीति होने के कारण देश में गरीबी और भुखमरी में वृद्धि हुई। अपने मौद्रिक विचारों में उन्होने मुद्रा के महत्व और स्वर्ण विनिमय मानक पर विचार किया। उनके विचार बहुत ही तार्किक थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- डॉ. अमरनाथ पासवान (संपादित), हाशिये का समाज एवं डॉ. आम्बेडकर, टाइम्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2015, पृ. 22
2- बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्गमय, खण्ड–1, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1993, पृ. 268
3- बी.आर. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, महाराष्ट सरकार, खण्ड 1, 2021, पृष्ठ 274 –275
4- डॉ. कृष्णगोपाल, बाबा साहब व्यक्ति और विचार, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ 19.
5- डॉ. कृष्णगोपाल, बाबा साहब व्यक्ति और विचार, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ 22
6- भगवान दास,दी स्पोक ऑफ अम्बेडकर, खंड 01, बुद्धिस्ट पब्लिशिंग हाउस, जालंधर, पृ 115
7- डॉ. रामवचन राव, : "डॉ. अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सागर प्रकाशन, 1996, पृष्ठ 268
8- बीआर अम्बेडकर, दी प्राब्लम आफ रूपी:इट्स आरीजिन एंड साल्युशन, पीएस किंग्स, लंडन,1923,पृ 112
9- बी.आर. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, महाराष्ट्र सरकार, खण्ड 1, 1979, पृष्ठ 115

[18] एस. गोपाल, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ नेहरू, जवाहर लाल मेमोरियल फंड, नई दिल्ली, 1984, पृ 197–198

10- बी आर अम्बेडकर, स्टेट्स एंड माइनोरिटीस, आल इंडिया सेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन, 1947, पृ 15
11- डी आर जाटव, भीमराव अम्बेडकर का समाज दर्शन, समता साहित्य सदन, 1966, पृ 15–16
12- आर सिंह, भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक चिंतन, जोधपुर, 1999, पृ 41
13- एन.जाधव, डॉ अम्बेडकर : आर्थिक विचार एवं दर्शन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ 136
14- केपी भटनागर, हिस्ट्री आफ इकोनोमिक थाट्स, कृष्णा प्रकाशन, 1947, पृ 280
15- बी आर अम्बेडकर, स्टेट्स एंड माइनोरिटीस, आल इंडिया सेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन, 1947, पृ 31
16- एन.जाधव, डॉ अम्बेडकर : आर्थिक विचार एवं दर्शन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ 145
17- बी.आर. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, महाराष्ट सरकार, खण्ड 1, 2021, पृष्ठ 275–76
18- एस. गोपाल, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ नेहरू, जवाहर लाल मेमोरियल फंड, नई दिल्ली, 1984, पृ 197–198

बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूपों का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. नीतीश कुमार*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूपों का ऐतिहासिक विश्लेषण'' का अध्ययन है। बिहार में बौद्ध धर्म के उद्‌भव, उत्कर्ष और व्यापक प्रसार का एक प्रमुख ऐतिहासिक केन्द्र रहा है। प्राचीन मगध क्षेत्र में अवस्थित बोधगया, नालंदा, वैशाली तथा राजगीर जैसे स्थलों पर निर्मित स्तूप केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक–सांस्कृतिक संरचनाओं, राजनीतिक संरक्षण तथा स्थापत्य–कौशल के विकास के भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इस शोध का मुख्य उद्देश्य बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूपों का ऐतिहासिक, स्थापत्य, धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन में मौर्य, गुप्त और पाल कालीन स्थापत्य–विकास, शासकीय आश्रय, अंतरराष्ट्रीय संपर्कों तथा पुरातात्विक उत्खननों के प्रमाणों के आधार पर स्तूप–परंपरा की बहुआयामी ऐतिहासिकता का विवेचन किया गया है। यह शोध लेख स्पष्ट करता है कि स्तूप मात्र अवशेष या स्मारक नहीं हैं, अपितु वे बौद्ध दर्शन के मूर्त रूप, सांस्कृतिक निरंतरता के सशक्त संवाहक तथा भारतीय सभ्यता की बहुलतावादी चेतना के प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

विशिष्ट शब्द : बौद्ध स्तूप, मगध, मौर्यकाल, अशोक, गुप्तकाल, पालकाल, स्थापत्य कला, पुरातत्व, बोधगया, नालंदा, वैशाली, राजगीर, सांस्कृतिक विरासत आदि ।

प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परंपरा में बिहार का स्थान अत्यंत विशिष्ट रहा है। प्राचीन काल में यह क्षेत्र मगध के नाम से प्रसिद्ध था, जिसने न केवल राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया को गति दी, बल्कि धार्मिक एवं दार्शनिक नवचेतना को भी जन्म दिया। इसी भूमि पर छठी शताब्दी ईसा पूर्व में गौतम बुद्ध ने अपने ज्ञानोदय के पश्चात् एक ऐसे धर्म–दर्शन की स्थापना की, जिसने मानवता को करुणा, मध्यम मार्ग और अहिंसा का सार्वभौमिक संदेश प्रदान किया। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में बिहार के विभिन्न स्थलों विशेषतः बोधगया, नालंदा, वैशाली तथा राजगीर में बौद्ध धर्म के विकास, संस्थागत विस्तार और सांस्कृतिक स्थिरीकरण में केंद्रीय भूमिका निभाई है।

बौद्ध स्तूप भारतीय स्थापत्य परंपरा का केवल एक वास्तु–तत्व नहीं हैय यह स्मृति, श्रद्धा और आध्यात्मिक चेतना का मूर्त रूप है। स्तूप मूलतः बुद्ध या उनके प्रमुख शिष्यों के अवशेषों पर निर्मित स्मारक थे, परंतु कालांतर में वे बौद्ध समाज की सामूहिक आस्था, संघीय संगठन और सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक बन गए। बिहार में स्थित प्रमुख स्तूप इस ऐतिहासिक विकासक्रम के प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं। इन स्तूपों का निर्माण मौर्य, शुंग, कुषाण, गुप्त और पाल कालों में विभिन्न चरणों में हुआ, जिससे यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म केवल एक धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह राज्य–प्रायोजित तथा समाज–आधारित सांस्कृतिक क्रांति भी था।

विशेष रूप से अशोक के शासनकाल में बौद्ध स्तूपों का व्यापक निर्माण हुआ। अशोक ने बुद्ध के अवशेषों को विभाजित कर अनेक स्तूपों की स्थापना करवाई, जिससे धर्म का प्रसार व्यापक भूभाग में संभव हो सका। बिहार के स्तूप इस मौर्यकालीन संरक्षण नीति के जीवंत प्रमाण हैं। अशोक द्वारा स्थापित या पुनर्निर्मित स्तूपों ने न केवल धार्मिक तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की, बल्कि वे राजनीतिक एकता और नैतिक शासन की अवधारणा के भी प्रतीक बने।

बिहार के बौद्ध स्तूपों की ऐतिहासिक समीक्षा करते समय यह ध्यान देना आवश्यक है कि ये स्मारक स्थिर संरचनाएँ नहीं रहेय वे समय के साथ परिवर्तित, विस्तारित और पुनर्निमित होते रहे। गुप्तकालीन कलात्मक परिष्कार, पालकालीन बौद्ध–तांत्रिक प्रभाव तथा मध्यकालीन विनाशकृइन सभी चरणों ने स्तूपों के स्वरूप और संरचना को प्रभावित किया। अतः इनका अध्ययन केवल स्थापत्य विश्लेषण तक सीमित नहीं रह

* Ph.D., NET-JRF (Archaeology), प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 8340255616, E-mail id : nitishk314@gmail.com

सकताय यह राजनीतिक इतिहास, धार्मिक परिवर्तन, कला–विकास और सामाजिक संरचना के अंतर्संबंधों को समझने का भी माध्यम है।

इतिहासकारों और पुरातत्वविदों के लिए बिहार के बौद्ध स्तूप इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे प्राचीन भारतीय शहरीकरण, व्यापारिक मार्गों और अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संपर्कों का संकेत देते हैं। चीन के यात्री ग्नंद्रंदह तथा फाह्यान जैसे विद्वानों ने अपने यात्रा–वृत्तांतों में बिहार के स्तूपों और विहारों का विस्तृत वर्णन किया है, जिससे इनकी उस समय की स्थिति और महत्ता का ज्ञान होता है। इन विवरणों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बिहार वैश्विक बौद्ध नेटवर्क का एक केंद्रीय नोड था।

आधुनिक काल में, पुरातात्विक उत्खननों और संरक्षण प्रयासों ने इन स्तूपों की ऐतिहासिक परतों को पुनः उद्घाटित किया है। विशेषकर महाबोधी मन्दीर परिसर को विश्व धरोहर का दर्जा मिलने के पश्चात् अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसके महत्व को और मान्यता प्राप्त हुई है। इसी प्रकार नालंदा और वैशाली के स्तूप आज भी न केवल ऐतिहासिक शोध का विषय हैं, बल्कि सांस्कृतिक पर्यटन और वैश्विक बौद्ध समुदाय की आस्था के केंद्र भी हैं।

बोधगया का महाबोधि स्तूप : बोधगया, जिसे उमैबुद्ध स्थल भी कहा जाता है, वह वह स्थान है जहाँ सिद्धार्थ गौतम ने बोधि वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बुद्धत्व की प्राप्ति की थी। यह स्थान बौद्ध धर्म का सर्वाधिक पवित्र स्थल है।

महाबोधि स्तूप का आरंभिक निर्माण सीता के मनोयोग से मौर्य राजा अशोक (3तक सदी ईसा पूर्व) के शासनकाल में माना जाता है। अशोक की धर्म नीति एवं बौद्ध धर्म–समर्थन के संदर्भ में यह स्थल एक केन्द्रीय संरचना की तरह विकसित हुआ। बाद में, गुप्तकाल (4–6 सदी ई.) में इसका पुनर्निर्माण तथा विस्तार हुआ, और मध्यकाल में पुनः कई पुनर्निर्माण कार्य हुए।

स्थापत्य और प्रतीकात्मकता : महाबोधि स्तूप की वास्तुकला में धवलीकरण, विशाल गुम्बद, गजांकित आकृतियाँ, एवं चारों दिशाओं में प्रार्थना पथ का समावेश है। इसकी आकृति भारत में विकसित स्तूप परंपरा को गहराई से दर्शाती है –

- वृत्ताकार आधार : ब्रह्माण्ड के समन्वय का प्रतीक
- गुम्बद एवं ऊर्ध्व शिखर : आत्मा की ऊर्ध्वाधर उन्नति
- चारों ओर प्रार्थना पथ : सर्वदिशा में समता और समन्वय

स्तूप के भीतर अवशेषों का स्थान, धार्मिक पूजाक्रमों की संरचना, तथा बुद्ध–लघुचित्रों का संयोजन इसे विशुद्ध बौद्ध चिन्हात्मकता प्रदान करता है।

धार्मिक और सामाजिक प्रभाव : महाबोधि स्तूप केवल स्थापत्य या स्मारक नहीं है, यह बुद्ध धर्म के सरलीकृत दर्शन का केन्द्र है। ध्यान योग्य यह तथ्य है कि बोधगया न केवल भारतीय बौद्धों के लिए तीर्थ था, बल्कि चीनी, तिब्बती, जापानी और दक्षिण–पूर्व एशियाई बौद्धों का भी प्रमुख तीर्थ बन गया। यह वैश्विक बौद्ध समुदाय को एक साझा स्थल प्रदान करता है।

सुरक्षा, संरक्षण तथा सर्वसमाजिक भूमिका : महाबोधि स्तूप का संरक्षण आधुनिक काल में सी.एच.ओ. (UNESCO) और भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा किया जाता है। यहाँ न केवल धरोहर संरक्षण है, बल्कि यह स्थान स्थानीय सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों का भी केंद्र रहा है। पर्यटन, स्मारक संरक्षण, पूजा–आचार आदि का समन्वय इसे एक जीवंत सांस्कृतिक स्थान बनाता है।

नालंदा स्तूप : नालंदा विश्वविद्यालय प्राचीन भारत का महान शिक्षण संस्थान था। यहाँ हजारों विद्वान अध्ययन करते थे और अनेक देशों से विद्यार्थी आते थे। नालंदा में अध्ययन के विविध विषयों में तिब्बती, चीनी, बर्मीज और सेंट्रल एशियाई विद्वानों की उपस्थिति ने इसे एक अंतरराष्ट्रीय शोध–केन्द्र के रूप में स्थापित किया।

नालंदा परिसर के मध्य में एक विशाल स्तूप का निर्माण था, जो वहाँ अध्ययन, पूजा और विज्ञान के समन्वय का स्थल था। नालंदा के स्तूपों पर विस्तृत खुदाइयाँ हुई हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि ये स्तूप समय–समय पर विस्तृत निर्माण, पुनर्निर्माण और संवर्द्धन के दौर से गुजरे।

पुरातात्विक संरचना और विन्यास :

- बड़े गुम्बदाकार स्तूप
- बहुआयामी प्रार्थना मार्ग
- आवासीय विहार परिसर
- विद्यापीठ संग्राहलय एवं पुस्तकालय

इन संरचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि स्तूप यहाँ केवल पूजा का स्थल नहीं था, बल्कि यह शैक्षिक एवं मठीय गतिविधियों का केन्द्र भी था। नालंदा विश्वविद्यालय के विद्वानों ने बौद्ध ग्रंथों, दर्शन और भाषाओं का अध्ययन तथा अनुवाद किया। वे चीन, कश्मीर तथा दक्षिण–पूर्व एशिया तक गए। नालंदा के स्तूप और विहारों ने बौद्ध संस्कृति के प्रसार में महत्वूपर्ण भूमिका निभाई। स्तूप यहाँ एक ज्ञान–संग्रह और सांस्कृतिक आदान–प्रदान का केन्द्र था।

वैशाली तथा राजगीर के स्तूप

वैशाली के बौद्ध स्मारक : वैशाली, जो बिहार के वर्तमान क्षेत्र में स्थित एक महत्वपूर्ण प्राचीन नगर है, बौद्ध धर्म के इतिहास में इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ भगवान बुद्ध ने अंतिम उपदेश दिए थे और महापरिनिर्वाण की घोषणा के बाद परिनिर्वाण शिखा (शिखर) यहाँ पर प्रतिष्ठित की गई थी। वैशाली के स्तूपों में मुख्यतः लिच्छवि शासनकालीन स्थापत्य विन्यास तथा स्थानीय सामुदायिक योगदान की झलक मिलती है।

वैशाली स्तूप का रूप निम्नलिखित वैशिष्टय दर्शाता है –

- वृत्ताकार आधार संरचना
- प्रार्थना पथ की उपलब्धता
- स्मरणीय शिलालेख तथा स्थानीय मौलिक शैली

वैशाली के स्तूप बौद्ध धर्म की अंतिम यात्रा और उसके बाद के सामाजिक चिंतन का प्रतीक हैं।

राजगीर में स्तूप एवं बौद्ध परिसर : राजगीर (राजगृह) मगध साम्राज्य का ऐतिहासिक नगर था जहाँ बुद्ध कई वर्ष रहे और धर्म–प्रचार के कई महत्वपूर्ण संगठन हुए। यहाँ कई स्तूप संरचनाएँ व्याप्त हैं, जिनमें प्रमुख हैं –

- ग्रिहवास संघ स्तूप
- प्याव (बुद्ध से संबंधित धार्मिक स्थल)
- आसन पर्वत के निकट स्तूप

राजगीर में स्तूप की संरचना सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के साथ गठित होती है, जहाँ स्थानीय राजाओं तथा सामंतों की भूमिका स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

स्तूपों का सांस्कृतिक–धार्मिक तथा राजनीतिक प्रभाव

धार्मिक और दार्शनिक प्रभाव : बिहार के बौद्ध स्तूपों का धार्मिक महत्व सिर्फ स्थापत्य या पूजा स्थल तक सीमित नहीं है। ये स्तूप बुद्ध–धर्म की महान शिक्षाओं का भौतिक रूप, ध्यान और मनन का केन्द्र तथा परमार्थ (मोक्ष, निर्वाण की दिशा) की अनुभूति का माध्यम रहे हैं।

इन स्मारकों के दर्शन से बौद्ध धर्म के मूल तत्व स्पष्ट होते हैं –

- दैनंदिन चिंता से परे आध्यात्मिक अनुशासन
- करुणा एवं साम्यवादी दृष्टिकोण
- जीवन–मृत्यु के चक्रीय स्वरूप की समझ

राजनीतिक एवं सामुदायिक भूमिका : प्राचीन काल में बिहार के बौद्ध स्तूपों का निर्माण राजसी समर्थन के साथ हुआ विशेषतः मौर्य एवं गुप्त वंशों द्वारा। यही समर्थन बौद्ध शिक्षा और संस्कृति को विस्तारित करने में निर्णायक रहा। बाद के युगों में यह सामुदायिक लोक–परिवार की पहचान के केन्द्र भी बन गए, जहाँ पर जन–समुदाय धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित होता था।

पुरातात्विक सर्वेक्षण एवं खोज : बीसवीं सदी के प्रथम भाग में भारतीय पुरातत्व संस्थान एवं विश्वविद्यालयों द्वारा बौद्ध स्तूपों पर शोध और खुदाई कार्य निरंतर जारी रहे। नालंदा, बोधगया और वैशाली में मिले अवशेषों ने ये संकेत दिए कि ये संरचनाएँ बहु–स्तरीय निर्माण और पुनर्निर्माण की प्रणालियों से गुजरीं हैं।

अतः "बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूपों का ऐतिहासिक विश्लेषण" केवल स्मारकों के वर्णन तक सीमित नहीं है, यह एक बहुआयामी अध्ययन है, जो धर्म, राजनीति, समाज, कला और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के जटिल ताने–बाने को समझने का प्रयास करता है। यह शोध इस धारणा पर आधारित है कि स्तूपों का इतिहास दरअसल उस समाज का इतिहास है जिसने उन्हें निर्मित कियाकृउनकी आस्थाओं, उनके संघर्षों और उनकी सांस्कृतिक चेतना का इतिहास।

साहित्य समीक्षा

बिहार सरकार एवं मीडिया स्रोतों के विस्तृत रिपोर्ट (2025) "वैशाली में बुद्ध सम्यक दर्शन संग्रहालय–सह–स्मृति स्तूप का उद्घाटन", Navbharat Times / TV9 Hindi / Dainik Bhaskar News Reports- में Buddha Samyak Darshan Museum and Memorial Stupa के उद्घाटन की खबरें ने वैशाली में बौद्ध स्मृति स्तूप

के वैश्विक महत्व को रेखांकित किया है। इस परियोजना में 15 देशों से भिक्षु और श्रद्धालु शामिल हुए, और इस स्मारक को वैशाली के ऐतिहासिक बौद्ध परंपरा का आधुनिक पुनरूत्थान बताया गया। शोध–समीक्षा के रूप में ये रिपोर्टें बताती हैं कि स्तूप के धार्मिक, सांस्कृतिक और पर्यटन–विकास संबंधी दृष्टिकोण अब आधुनिक सार्वजनिक अध्ययन में प्रमुख हैं।

डॉ. शोभाराम दुबे (2024) ने बिहार के बौद्ध कला और स्थापत्य–केंद्रों जैसे बोधगया, नालंदा, राजगीर और वैशाली पर केंद्रित अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिसमें स्तूपों को बौद्ध स्मृति–केंद्रों एवं स्थापत्य–कला के रूप में विश्लेषित किया गया है। यह लेख यह दिखाता है कि बिहार के बौद्ध स्मारक न केवल धार्मिक प्रतीक हैं बल्कि स्थानीय सांस्कृतिक केंद्र और सामाजिक–धार्मिक पहचान के वाहक हैं।[1]

उपिन्दर सिंह (2018), अपनी कृति A History of Ancient and Early Medieval India में उपिन्दर सिंह ने मौर्य एवं गुप्त कालीन स्थापत्य और धार्मिक स्मारकों का विश्लेषण करते हुए बिहार के बौद्ध स्तूपों को राजनीतिक संरक्षण और सांस्कृतिक वैधता के प्रतीक के रूप में देखा है।[2]

अनिल कुमार (2005), इन्होने बिहार के पुरातात्विक स्थलों पर केंद्रित अपने शोध में नालंदा एवं वैशाली के स्तूपों के स्थापत्य–विकास और उत्खनन संबंधी तथ्यों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।[3]

डी.एन. झा (2004), इन्होंने प्राचीन भारत के सामाजिक–आर्थिक इतिहास के संदर्भ में बौद्ध धर्म के प्रसार और स्मारक–निर्माण को वर्गीय एवं राजनीतिक संरचनाओं से जोड़ा है।[4]

रोमिला थापर (2002), इन्होंने Early India में मौर्यकालीन धर्म–नीति और सम्राट अशोक की स्तूप–निर्माण नीति का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है।[5]

ए.एल. बाशम (1998), इन्होंने The Wonder That Was India में बौद्ध स्थापत्य और स्तूपों को भारतीय सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक माना है।[6]

एच.डी. संकालिया (1972), संकालिया ने भारतीय पुरातत्व के संदर्भ में स्तूपों की संरचनात्मक विशेषताओं और उत्खनन पद्धति का विश्लेषण किया है।[7]

ए. कनिंघम (1871), भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संस्थापक कनिंघम ने बिहार के बौद्ध स्थलों की प्रारंभिक पहचान एवं सर्वेक्षण कर ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत किए।[8]

उद्देश्य

1. बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूपों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना।
2. स्तूपों के स्थापत्य विकास का कालानुक्रमिक अध्ययन प्रस्तुत करना।
3. मौर्य, गुप्त एवं पाल काल में स्तूप–निर्माण की राज्य–नीति का परीक्षण करना।
4. पुरातात्विक उत्खननों एवं आधुनिक संरक्षण प्रयासों का समालोचनात्मक अध्ययन करना।
5. बिहार के स्तूपों के माध्यम से प्राचीन भारत के अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संपर्कों का विश्लेषण करना।

परिकल्पना

1. बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूप केवल धार्मिक स्मारक नहीं हैं, बल्कि वे प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला और राजनीति के महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं।
2. यह परिकल्पना की जाती है कि इन स्तूपों का निर्माण और विकास विभिन्न राजवंशों के संरक्षण में हुआ तथा उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार और सांस्कृतिक एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
3. साथ ही यह भी माना जाता है कि बोधगया, नालंदा, वैषाली और राजगीर जैसे स्थलों के स्तूप उस समय की सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों के केंद्र रहे होंगे।

निष्कर्ष

बिहार के प्रमुख बौद्ध स्तूप भारतीय इतिहास की बहुआयामी परंपरा के जीवंत साक्ष्य हैं। ये स्मारक केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक नहीं, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना, राजनीतिक संरक्षण और अंतरराश्ट्रीय सांस्कृतिक आदान–प्रदान के केंद्र भी रहे हैं। मौर्यकाल में अषोक द्वारा आरंभ की गई स्तूप–निर्माण परंपरा ने बौद्ध धर्म को संस्थागत आधार प्रदान किया। गुप्त और पाल काल में इन स्तूपों का सीापत्य परिश्कार हुआ, जिससे वे कला और वास्तुकला की दृश्टि से भी महत्वपूर्ण बन गए। नालंदा और वैषाली जैसे स्थलों ने बौद्ध धर्म को वैष्विक पहचान दिलाई।

अतः आधुनिक संरक्षण प्रयासों के बावजूद, कई स्तूप प्राकृतिक क्षरण और मानवीय उपेक्षा का सामना कर रहे हैं। अतः आवश्यकता है कि इन स्मारकों को केवल र्प्यटन सलि के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृ

तिक–ऐतिहासिक धरोहर के रूप में संरक्षित किया जाए। बिहार के बौद्ध स्तूप न केवल अतीत की स्मृति हैं, बल्कि वे भारतीय सभ्यता की सहिश्णुता, ज्ञान और करुणा की निरंतर परंपरा के प्रतीक भी हैं।

सन्दर्भ सूची

1. दुबे, शोभाराम, (2024) बिहार के बौद्ध कला केंद्र. रिसर्च हब इंटरनेशनल मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, 9(2), 14–19।
2. सिंह, उपिन्दर (2018) प्राचीन एवं प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास (A History of Ancient and Early Medieval India) नई दिल्ली, पियर्सन लॉन्गमैन।
3. कुमार, अनिल, (2005), बिहार के बौद्ध स्थल (Buddhist Sites of Bihar) पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
4. झा, द्विजेन्द्र नारायण. (2004). प्राचीन भारत, एक प्रारंभिक रूपरेखा (Ancient India: An Introductory Outline), नई दिल्ली, मनोहर प्रकाशन।
5. थापर, रोमिला, (2002), प्रारंभिक भारत, उत्पत्ति से 1300 ईस्वी तक (Early India: From the Origins to AD 1300) नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स।
6. बाशम, आर्थर ल्लेवेलिन (1998) अद्‌भुत भारत (The Wonder That Was India) नई दिल्ली, रूपा एंड कंपनी।
7. संकालिया, हसमुख धीरजलाल, (1972) भारतीय पुरातत्व आज (Indian Archaeology Today) नई दिल्ली, एशियन पब्लिशिंग हाउस।
8. कनिंघम, अलेक्जेंडर (1871), प्राचीन भारत का भूगोल (The Ancient Geography of India). लंदन, ट्रूबनर एंड कंपनी।

वैकल्पिक चिंतन धारा का विकास : औपनिवेशिक मुंगेर में बहुजन चेतना का उभार

सुमित कुमार

मेजर एडम्स के नेतृत्व में ईस्ट इंडिया कंपनी की फौज ने 1 अक्टूबर 1763 ईस्वी को मुंगेर किले पर आक्रमण किया।[1] मीर कासिम पहले ही किला छोड़ चुके थे, इसलिए मेजर एडम्स को किसी खास प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा।[2] गंगा के दक्षिणी किनारे पर स्थित प्राचीन काल में मोदगिरी के नाम से प्रसिद्ध और सामरिक दृष्टिकोण से इतिहास के हर कालखंड में महत्वपूर्ण मुंगेर पर यह कोई प्रथम आक्रमण नहीं था।[3] पर ऐतिहासिक रूप से धार्मिक यात्रा, व्यापार, पलायन के साथ साथ युद्ध भी विभिन्न सभ्यताओं के बीच संवाद स्थापित करता रहा है। इतिहासकार जोज़फ अर्नाल्ड ट्वानबी के शब्दों में कहे तो बाहरी सभ्यता की घुसपैठ से एक चुनौती मिलती हैं।[4] वैसे तो हर कालखंड के लोगों की अपनी बौद्धिक समझ और चिंतन प्रक्रिया होती हैं पर अंग्रेज जिस दौर में भारतीय उपमहाद्वीप में एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति बनकर उभरे यूरोप में वह दौर पुनर्जागरण और वैज्ञानिक क्रांति की नींव पर स्थापित प्रबोधन का युग था। यूरोपीय समाज तर्कशील, मानवतावादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक व्यवस्था की ओर कदम बढ़ा चुका था, जिसके केंद्र में व्यक्ति और उसकी स्वतंत्रता थी। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने उपनिवेश में आधुनिक शिक्षा की शुरुआत कर यूरोप के प्रगतिशील मानवतावादी विचारों से भारतीयों को रुबरु करवाया। हालांकि अंग्रेज जानते थे कि इन मानवतावादी प्रगतिशील विचारों का उपनिवेशों की जनता के बीच फैलना साम्राज्य के लिए हानिकारक था । परंतु पश्चिम और पूरब की सभ्यताओं के बीच संवाद को रोकना संभव नहीं था। सर विलियम जोंस और जोनाथन डंकन जैसे उत्साही प्राच्यविदों ने इस संवाद को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आधुनिक शिक्षा को भारत में फैलाने का एक उद्देश्य यह भी था कि अंग्रेज अपनी सभ्यता को श्रेष्ठ मानते थे। शेखर बंदोपाध्याय लिखते हैं कि, "सोलहवीं सदी में आयरलैंड की विजय के बाद अंग्रेज धीरे-धीरे आयरलैंड से अमेरिका तक और भारत से अफ्रीका तक दुनिया भर में 'पिछड़े जनगणों को सभ्य बनाने के लिए जिम्मेदार नए रोमनों' की भूमिका में उभरकर आए"।[5] साम्राज्यवादी शोषण और औपनिवेशिक लूट को छिपाने के लिए अंग्रेजों ने "श्वेत व्यक्ति का बोझ" और "सामाजिक डार्विनवाद" जैसे यूरोसेंट्रिक तर्क गढ़े। पर आधुनिक शिक्षा को भारत में फैलाने के जो भी कारण हो इसने आधुनिक भारत के पहले शिक्षित मध्यम वर्ग की नींव रखी। इस नए शिक्षित वर्ग के कारण ही धीरे धीरे देश में भी धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ चेतना का विकास शुरू हुआ । यह शोध पत्र बिहार राज्य के मुंगेर जिले में हुए बहुजन चेतना के विकास यात्रा पर केंद्रित हैं।

वर्तमान मुंगेर के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के दलित और पिछड़ी आबादी वाले गावों में बाबा साहब भीम राव अंबेडकर की दर्जनों मूर्तियां सामाजिक क्रांति और बहुजन चेतना के प्रतीक का प्रतिबिंब है। बाबा साहब की मूर्ति ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिरोध, संघर्ष, अस्मिता की लड़ाई की प्रतीक हैं। उदाहरण स्वरूप अक्सर मुंगेर से बरियारपुर जाने के क्रम में विभिन्न चौराहों पर अंबेडकर की मूर्तियां एक पल में ही यह अहसास दिलाती हैं कि ये रास्ते जिन गावों की ओर जाते हैं वो ब्राह्मणवाद के खिलाफ डट कर खड़े एक वैकल्पिक चिंतन धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं जो बुद्ध से शुरू होकर कबीर, रैदास से होते हुए फुले, आंबेडकर के संघर्ष से निर्मित बहुजन चेतना का निर्माण करती हैं। और इन्हीं गांवों से बहुजन नेतृत्व उभर कर सामने आ रहा है जो विभिन्न संगठनों के माध्यम से बहुजन चेतना के विकास के लिए कार्य कर रहा है। बहुजन चेतना का विकास क्यों जरूरी है यह मशहूर भारतीय राजनीतिक सिद्धांतकार, लेखक और दलित अधिकार के लिए आवाज उठाने वाले कांचा इलाइया अपनी किताब 'शूद्र विद्रोह' में मंडल आयोग की रिपोर्ट में वर्णित उद्धरण से समझाते हैं। वे लिखते हैं, "जाति व्यवस्था की असली सफलता यह नहीं रही कि उसने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को

बनाए रखा, बल्कि उसकी असली सफलता यह रही कि उसने निम्न जातियों की चेतना को इस तरह परिवर्तित कर दिया कि वे धार्मिक पदक्रम में अपने निचले दर्जे को स्वाभाविक मानने लगे।"[(6)] तो हम समझ सकते कि गुलाम मानसिकता से लड़ने के लिए इन संगठनों को कितनी मशक्कत करनी पड़ती होगी। संगठनों द्वारा बहुजन नायकों के जन्मदिवस और पुण्यतिथि जैसे अवसरों पर संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता हैं। जिसमें मुंगेर जिले के गणमान्य बहुजन बुद्धिजीवी और नेता भाग लेते हैं। मैं भी इस क्षेत्र में बहुजन चेतना के विकास यात्रा के इतिहास को समझने के लिए इन संगोष्ठियों में जाने का अवसर नहीं छोड़ता हूँ। इसलिए मुंगेर में बहुजन चेतना के इतिहास को समझने के लिए वर्तमान से अतीत की यात्रा पर मै निकल पड़ा। हाल ही में दो ऐसे संगोष्ठियों में जाने का अवसर मिला। पहला जब बिहार फुले आंबेडकर युवा मंच के जिला सचिव अमन रंजन यादव ने 8 फरवरी 2026 को मुंगेर के टाऊन हॉल में आयोजित रैदास महासभा में शामिल होने का मुझे आमंत्रण भेजा और दूसरा जेआरएस कॉलेज जमालपुर के प्रधानाचार्य प्रो देवराज सुमन जी ने 15 फरवरी 2026 को अपने पिता और मुंगेर के प्रख्यात समाजवादी नेता स्वर्गीय प्रो भागवत प्रसाद यादव जी की 39वीं पुण्यतिथि में भी शामिल होने का आमंत्रण जब दिया तो मैं काफी उत्साहित हुआ। मैंने इसे अपने शोध पत्र लेखन के लिए महत्वपूर्ण माना। इन संगोष्ठियों में जाकर पता चलता हैं कि किस प्रकार महानगरों से दूर बिहार के इन छोटे शहरों में बहुजन जागरण के आंदोलन की विकास यात्रा अनवरत रूप से जारी है। इन आयोजनों में फुले अंबेडकर की संघर्ष यात्रा को बिहार के परिपेक्ष्य में समाजवादी आंदोलन के संघर्ष से जोड़ कर देखना सबसे दिलचस्प बात है। प्रो भागवत प्रसाद यादव जिन्हें आम जनता प्यार से भागवत बाबू कहकर पुकारती है का जन्म मुंगेर जिले के बरियारपुर में हुआ था। बरियारपुर में शिक्षा और बहुजन चेतना के विकास में उनके द्वारा किए गए कार्य ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले के संघर्ष की याद दिलाता है। संघर्ष के ऐसे जुड़ाव को संगोष्ठियों के माध्यम से बहुजन बुद्धिजीवी नई पीढ़ी को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना सिखाते हैं। आयोजन स्थल में प्रवेश करते ही मैंने देखा आदिवासी, दलित और पिछड़े समाज से आने वाले श्रोताओं और वक्ताओं से हॉल और मंच भरा हुआ था। बहुजन समाज के स्थानीय नेता, अफसर और बुद्धिजीवी एक मंच पर उपस्थित थे। वक्ताओं के भाषणों का निचोड़ एक ऐसी धारा थी जो ब्राह्मणवाद के खिलाफ वैकल्पिक इतिहास और संस्कृति की खोज में बुद्ध से शुरू होकर भक्ति आंदोलन के संतों कबीर, रैदास से होते हुए आधुनिक काल में फुले, पेरियार और आंबेडकर तक जाती हैं। दलित समाज से आने वाली मुंगेर जिले के जमालपुर नगर पालिका की उप मुख्य पार्षद अंजलि कुमारी के आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता को देखकर उन्नीसवीं शताब्दी के दलित समाज सुधारक गोपाल बाबा वलंगकर (1840-1900 ईस्वी) के साथ हुए अन्याय की याद आना स्वाभाविक है। इतिहासकार अनुपमा राव अपनी किताब 'जाति का प्रश्न: दलित और आधुनिक भारत की राजनीति' में लिखती हैं, "जब गोपाल बाबा वलांकर को महाड लोकल बोर्ड में नॉमिनेट किया गया तो सवर्ण हिंदुओं और मुसलमानों ने बोर्ड की बैठक का बहिष्कार किया"। [(7)] इससे हम साफ समझ सकते हैं कि आज जो पद और प्रतिष्ठा को बहुजनों ने हासिल किया है वो एक लंबे संघर्ष का परिणाम है। हालांकि अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। पर इस ऐतिहासिक यात्रा की पड़ताल आवश्यक है। आइए हम औपनिवेशिक काल के मुंगेर के इतिहास में बोए गए सामाजिक क्रांति के बीज जो अब एक बरगद बन चुका है कि ऐतिहासिक यात्रा शुरू करे।

आधुनिक शिक्षा ने शिक्षित मध्यम वर्ग का निर्माण किया जो वैज्ञानिक, तर्कशील, मानवतावादी, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण से धर्म, समाज और संस्कृति को देखता था। यह वो वर्ग था जिसने अपनी बौद्धिक चेतना का विकास जॉन लॉक, थॉमस पेन, डेविड ह्यूम, जीन-जैक्स रूसो, मोंटेस्क्यू, वाल्टेयर आदि को पढ़कर प्राप्त किया। छोटे स्तर पर ही सही पर भारतीय समाज का एक सूक्ष्म हिस्सा पितृसत्तात्मक सामंतवादी जड़ व्यवस्था के उलट प्राकृतिक अधिकार, धार्मिक सहिष्णुता, उदारवादी शासन की अवधारणा, सामाजिक अनुबंध का

सिद्धांत, तर्क और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अंधविश्वास और धार्मिक कट्टरता की आलोचना, समानता, नागरिक अधिकार आदि मुद्दों पर चिंतन करने लगा था। इसी चिंतन धारा ने बंगाल के पुनर्जागरण की नींव डाली। शनै शनै स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, क्लब और विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से आधुनिक औपनिवेशिक समाज देश में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ एकत्रित होने लगा। फिर तो सामाजिक सुधार आंदोलन की श्रृंखला चल पड़ी। बंगाल पुनर्जागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय जो पूरब और पश्चिम के दर्शन के समन्वय में विश्वास करते थे पर धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के प्रति सजग थे। उन्होंने सती प्रथा, बाल विवाह, जाति व्यवस्था आदि सामाजिक कुरीतियों पर खुलकर प्रहार किया। धार्मिक ग्रंथों की पुनर्व्याख्या कर अपने लेखन के माध्यम से धर्म के मूल में समाहित प्रेम और सौहार्द को समाज के सामने रखा। पी सी राय चौधरी मुंगेर गजेटियर में लिखते हैं कि, "ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने जो उपदेश दिया, वह उपनिषदों के एकेश्वरवाद और अलग अलग समुदायों के समाज में सबसे अच्छी बात कि बस एक नई व्याख्या थी। राजा राममोहन राय को अक्सर ईसाई समझ लिया जाता था क्योंकि वह अक्सर प्रभु यीशु के संदेश का मतलब निकालते थे, जबकि साथ ही वे मुसलमानों के पवित्र कुरान से भी खुलकर प्रेरणा लेते थे"।[(8)] इस नए समाज की चिंतन धारा प्रगतिशील विचारधारा की ओर मुड़ने लगी थी। आगे चलकर बंगाल पुनर्जागरण की यात्रा कोलकाता जैसे महानगर से निकल कर छोटे नगरों, कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों तक भी पहुंची। औपनिवेशिक प्रशासनिक ढांचे ने प्रेसीडेंसी की राजधानी से ग्रामीण क्षेत्रों तक एक संरचना का विकास किया। जिला कलेक्टर, दीवानी व फौजदारी अदालत, थाना प्रणाली, नगर पालिका जैसी व्यवस्था ने प्रेसीडेंसी राजधानी से सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले आमजन को एक प्रशासनिक व्यवस्था के साथ जोड़ा। पत्रकारिता और रेलवे के विकास ने निश्चित तौर पर आधुनिक शिक्षा और प्रगतिशील विचारों को जन जन तक फैलाने में महती भूमिका निभाई। औपनिवेशिक शासन ने जिला स्तर पर भी आधुनिक शिक्षा की पहल की। दूसरी ओर कुछ व्यतिगत और संस्थागत प्रयास भी हुए। ईसाई मिशनरियों ने कस्बों और गांवों तक आधुनिक शिक्षा को पहुंचाया। इस तरह मुंगेर में भी एक सिविल सोसायटी की निर्माण प्रक्रिया शुरू हुई।

1834 ईस्वी में मुंगेर को जिला बनाया गया। 1864 ईस्वी में मुंगेर नगरपालिका की स्थापना हुई। पर 1862 ईस्वी में जमालपुर रेल कारखाने की स्थापना मुंगेर जिले के आधुनिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। जमालपुर में रेल कारखाने द्वारा लाए गए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन ने ब्रिटिश बुद्धिजीवियों का ध्यान भी खींचा। सन 1888 में रूडयार्ड किपलिंग जमालपुर आए थे और उन्होंने यहां के बारे में पायनियर में लिखा था और यह 'एमंग द रेलवे फोक' के नाम से प्रकाशित भी हुआ। उनकी इस विवेचना में रेल कारखाने का भी वर्णन है।

"ईटों से निर्मित एक विशाल टीन की छत वाले अस्तबल में प्रवेश करते हैं इसकी क्षमता का पता चलता है, जिसमें 25 रेल के इंजन मरम्मत के लिए रखे गए हैं। देखें, इन लोहे के घोड़ों के साथ क्या होता है, यदि इन्हें अच्छी तरह से काम करना है, तब इन्हें 3 साल में एक बार यहां आना होगा। वैसे इन्हें लोहे का घोड़ा कहना सही नहीं है, क्योंकि इंजन तो स्त्रीलिंग है, जैसे कि शिप"। इतिहासकार नितिन सिन्हा भी अपने लेख में कहते है कि रूडयार्ड किपलिंग ने जमालपुर को 'भारत का क्रीव' कहा है जो इंग्लैंड का एक रेल नगर था।[(9)] रेल कारखाना के कारण बंगाली बाबुओं की एक बड़ी आबादी का आगवन जिले में हुआ। अंग्रेजों और बंगालियों ने शहर के सिविल सोसायटी को गढ़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी की शाखाएं जल्द ही मुंगेर में स्थापित हो गई। कलकत्ते से बड़े बड़े समाज सुधारकों का आगमन मुंगेर होने लगा। पी सी राय चौधरी के मुंगेर गजेटियर से हमें 19वीं शताब्दी में आधुनिक शिक्षा से फैली चेतना के उभार की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती हैं। औपनिवेशिक मुंगेर के नागरिक समाज की विकास यात्रा के अध्ययन के लिए यह गजेटियर एक महत्वपूर्ण श्रोत है। वे लिखते है कि किस प्रकार 1864 ईस्वी तक ब्रह्म समाज की

शाखाएं क्रमशः मुंगेर और जमालपुर में स्थापित हो चुकी थी।(10) 1868 ईस्वी में दीनानाथ मजूमदार के नेतृत्व में मुंगेर में ब्रह्म मंदिर का निर्माण हुआ। इस मंदिर को बनाने में तत्कालीन जिलाधिकारी मिस्टर बार्लो ने सहायता की थी। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रह्म समाज आंदोलन कलकत्ते के भद्रलोग के बीच से निकल कर छोटे शहरों और कस्बों की ओर निकल पड़ा। खासकर बिहार के उन हिस्सों में जहां बंगाली आबादी बसने लगी थी। त्रैलोक्य नाथ सान्याल, नागेंद्र नाथ चटर्जी, गुरुदास चक्रवर्ती, ब्रज गोपाल नियोगी जैसे ब्रह्म मिशनरी भी थे जिन्होंने बिहार के अधिकांश जिलों का दौरा किया। हालांकि राजा राममोहन राय शायद मुंगेर नहीं आए थे। लेकिन उनके महान शिष्य श्री केशव चंद्र सेन ने मुंगेर की यात्रा की और यहां उपदेश भी दिया। 1860 से 1870 के दशक में केशव चंद्र सेन ने कई बार मुंगेर का दौरा किया। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने कुछ समय के लिए मुंगेर को अपना दूसरा घर बना लिया था। केशव चंद्र सेन जमालपुर के एक मोहल्ले में रहते थे जिसे उनके नाम पर केशवपुर(केशोपुर) के नाम से जाना जाने लगा।(11) मुंगेर केशव चंद्र सेन को बहुत प्रिय था और अपने अंतिम वर्षों में उन्होंने मुंगेर से मिली प्रेरणा का बार-बार उल्लेख किया है। वे बताते हैं कि मुंगेर में उन्होंने घर घर जाकर ब्रह्म समाज को एक विशिष्ट स्थान दिलाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। पी सी राय चौधरी के मुंगेर गजेटियर से ही हमे पता चलता है कि मुंगेर के ब्रह्म मंदिर में केशव चंद्र सेन की अस्थियां संरक्षित थी। उनके बाद उनकी बेटी सुचारू देवी (मयूरभंज की महारानी) ने मुंगेर आना जारी रखा। उन्होंने यहां तीर्थ यात्रियों के निवास की आधारशिला रखी और सभी महत्वपूर्ण ब्रह्मो उत्सव जैसे माघोत्सव,राजा राममोहन शताब्दी, केशव जयंती समारोह आदि यही मनाए। ब्रह्म समाज के संदेश को जिले में व्यापक रूप से सराहा गया। एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय, निम्न वर्ग के पुरुषों और मजदूर वर्ग के लिए एक रात्रि पाठशाला, एक वर्नाकुलर स्कूल की स्थापना ब्रह्म समाज कि कुछ प्रारंभिक गतिविधियां थी। ब्रह्म समाज का मुंगेर के सार्वजनिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। पहली बार महिलाओं ने अपना पर्दा त्याग दिया और खुले में आकर कीर्तन प्रार्थना और अन्य सामाजिक मेलों में भाग लेने लगी। सामुदायिक भोज ऐसे आयोजन हुआ करते थे जिनमें विभिन्न जातियों और धर्मों के पुरुष खासकर दलित और पिछड़े समुदाय के लोग भी शामिल होते थे। हालांकि ब्रह्म समाज आंदोलन आम जनता के बीच नहीं पहुंच पाया क्योंकि शिक्षित मध्यम वर्ग और उच्च जाति की पृष्ठभूमि से आने वाले इनके नेताओं की अपनी सीमाएं थी। पर इतना तो मानना पड़ेगा कि सदियों से जड़ सामाजिक व्यवस्था को ब्रह्म समाज ने हल्का धक्का तो दिया।

औपनिवेशिक मुंगेर में समाज सुधार आंदोलन में एक बड़ा नाम परिव्राजक कृष्णानंद स्वामी का आता है। उनका मूल नाम कृष्ण प्रसन्न सेन था और उन्होंने 12 वर्षों तक जमालपुर रेलवे वर्कशॉप में लिपिक के रूप में कार्य किया था।(12) उन्होंने 1882 ईस्वी में त्यागपत्र देकर धार्मिक कार्यों के प्रति अपना जीवन समर्पित किया। कृष्ण प्रसन्न सेन को पंजाब के महात्मा दयाल दास स्वामी ने कष्टहरणी घाट पर दीक्षा दी थी। उन्होंने 1874 ईस्वी में मुंगेर से हिंदी और बंगाली में 'धर्म प्रचारक' नमक द्विभाषी समाचार पत्र का संपादन शुरू किया। उनके नेतृत्व में आर्य धर्म प्रचारिणी सभा की भी स्थापना की गई। कृष्ण प्रसन्न सेन बहुत अच्छा भाषण देते थे। 1875 ईस्वी में मुंगेर अस्पताल में उनका भाषण सुनकर श्री इबांस ने कहा था कि, "अगर मेरे पास आपकी जैसी वाकपटुता होती तो मैं एक ही दिन में दुनिया का ईसाईकरण कर देता"।(13) 1875 ईस्वी में उन्होंने और श्यामा चरण भट्टाचार्य ने हरि सभा और सुनीति प्रचारिणी की स्थापना जमालपुर में की। ठीक इसी साल उन्होंने मुंगेर में 500 से अधिक धर्म सभाओं के एक नेटवर्क की स्थापना की जो बाद में पूरे उत्तर भारत में फैल गई। वे धार्मिक प्रवचनों के लिए हरि कीर्तन और हरी सभाओं के बहुत शौकीन थे। जमालपुर में उनके द्वारा स्थापित हरि सभा आज भी अस्तित्व में है। हरि सभाएं विभिन्न जातियों के लोगों को एक साथ लाती है। यहां एक बालिका विद्यालय भी हैं। कृष्ण प्रसन्न सेन ने 1882 में अपना मुख्यालय वाराणसी हस्तांतरित कर दिया और बाद में यह संप्रदाय सुधारवादी हिन्दू आंदोलन के व्यापक संप्रदाय में मिला दिया गया।

19वीं सदी में ईसाई मिशनरियों ने भी मुंगेर के सामाजिक जीवन को प्रभावित किया। ईसाई मिशनरियों ने छोटे शहरों, कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में सर्वप्रथम पहल की। इस जिले के सार्वजनिक जीवन के निर्माण में उनका विशेष योगदान रहा है। कुछ प्रारंभिक ईसाई हिंदी कवि भी थे। जॉन क्रिश्चियन मुंगेर जिले के प्रसिद्ध नील उत्पादक किसानों में से एक थे और उनके परिवार को सम्मान के साथ याद किया जाता हैं। पी सी राय चौधरी लिखते है कि, "जॉन क्रिश्चियन ने हिंदी में कई उल्लेखनीय गीतात्मक भजन लिखे जो आज भी 'जॉन साहब के भजन' के नाम से प्रसिद्ध हैं"।[14] मुंगेर के एक अन्य व्यक्ति नैन सुख ने भी कुछ हिंदी भजनों की रचना की जो आज भी गिरजाघरों में प्रचलित हैं। जॉन पार्सन्स नामक पादरी जिनकी कब्र मुंगेर में ही हैं उन्होंने भी कई भजन लिखे। मुंगेर के कब्रिस्तान में उनकी कब्र पर उल्लेख है कि उन्होंने बाइबिल का हिंदी में अनुवाद किया था। हालांकि श्रीरामपुर के कैरी ने 1819 ईस्वी के अंत तक पूरी बाइबिल का हिंदी में अनुवाद कर लिया था। पर उनका अनुवाद काफी जटिल था। ऐसा माना जाता है कि जॉन पार्सन्स ने हिंदी में बाइबिल का दुबारा अनुवाद किया। ईसाई मिशनरियों के साथ-साथ बड़ी संख्या में यूरोपीय परिवारों का उल्लेख किया जा सकता है जो 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक तक मुंगेर शहर के प्रमुख नागरिक रहे। उनमें से कई लोगों ने मुंगेर के विकास में बहुत योगदान दिया। हर्शेल डीयर ने अपने उदार दान के माध्यम से विभिन्न तरीकों से मुंगेर के नागरिक जीवन को आगे बढ़ाने में मदद की थी। मुंगेर का सदर अस्पताल वस्तुतः हर्शेल डीयर की ही देन हैं। जिले के सार्वजनिक जीवन में थियोसोफिकल सोसाइटी का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। जिसकी एक शाखा 1890 ईस्वी में डायमंड जुबली कॉलेज के प्रथम प्राचार्य श्री वैद्यनाथ बसु द्वारा खोली गई थी। छेदी प्रसाद चौधरी और पंडित हरिमोहन मिश्र इस सोसाइटी के अन्य प्रमुख सदस्य थे।[15] इन संस्थाओं और आंदोलनों का प्रभाव अत्यंत प्रभावशाली था और एक परासरण प्रक्रिया द्वारा विभिन्न कारकों को एक साथ लाने और एक स्वस्थ सार्वजनिक जीवन के निर्माण में सहायक रहा।

पी सी राय चौधरी ने मुंगेर गजेटियर में मुंगेर में आर्य समाज आंदोलन के विकास के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी है। वे लिखते हैं कि आर्य समाज मुंगेर जिले के सार्वजनिक जीवन में महान योगदान देने वाली एक धार्मिक सामाजिक संस्था थी। स्वामी दयानंद सरस्वती 1872 से 1873 ईस्वी के बीच मुंगेर, जमालपुर और भागलपुर की यात्रा की और धार्मिक प्रवचन दिए।[16] उनके दौरे के कुछ समय बाद प्रसिद्ध आर्य समाजी पंडित लेखराम का भी दौरा हुआ। आर्य समाज की शाखाएं जमालपुर, खगड़िया, गोगरी, हवेली खड़गपुर आदि स्थानों पर स्थापित की गई। ब्रह्म समाज के अग्रदूतों की तरह आर्य समाजी नेताओं को भी समाज और धर्म पर अपने उन्नत विचारों के कारण बहुत कष्ट सहना पड़ा। गोगरी में तो आगजनी की घटना तक हो गई और सबकुछ जल कर राख हो गया। पर तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद आंदोलन जारी रहा। स्वामी नित्यानंद, स्वामी विश्वेश्वरानंद और अन्य लोगों ने इसे आगे बढ़ाया। आर्य समाज ने अस्पृश्यता, सामाजिक भेदभाव और निरक्षरता को दूर करने का बीड़ा उठाया। 19वीं शताब्दी के मुंगेर में आर्य समाज के धार्मिक सामाजिक सुधार आंदोलन का दृष्टिकोण निश्चित तौर पर अन्य समाज सुधार आंदोलनों की तुलना में काफी विस्तृत और व्यापक था। जहां बाकी के सुधार आंदोलन शिक्षित मध्यम वर्ग और शहरी क्षेत्रों तक सीमित रह गए वही आर्य समाज ने यहां के ग्रामीण समाज की संरचना की नब्ज को पकड़ा। आर्य समाज का आधार छोटे शहरों और कस्बों से निकलकर सामंतवादी संरचना की मूल इकाई गांव तक पहुंच गई। इस संगठन द्वारा सदियों से जाति व्यवस्था के बंधन में जकड़े समाज की गांठों को ढीला करने का प्रयास किया गया। ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पोषक तिलमिला उठे इसलिए रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी व्यवस्था के ठेकेदारों ने आर्य समाज का सबसे हिंसक तरीके से विरोध किया। आर्य समाज की सभाओं को हमले झेलने पड़े। कभी कभी उनके प्रचारकों को गांवों में जाने से रोका जाता था। पर ऐसा क्या था कि आर्य समाज आंदोलन को एक तरफ तो इतनी व्यापकता मिली वहीं दूसरी ओर इतने विरोध का सामना करना पड़ा ? असल में आर्य समाज आंदोलन

की नीतियां खासकर अपने शुरुआती दिनों में तत्कालीन शोषणपूर्ण सामाजिक संरचना जिसके केंद्र में जाति व्यवस्था थी पर खुलकर प्रहार करता था। आर्य समाज द्वारा पुरोहितवाद, मूर्ति पूजा, छुआछूत, जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था आदि का खुलकर विरोध करने से जाति श्रेणीक्रम के हाशिए पर पड़ी जातियां उनके साथ हो गई। गौ रक्षा और शुद्धि जैसे आंदोलन से निश्चित तौर पर समाज में हिंदू मुस्लिम विभाजन को बढ़ावा मिला। सांप्रदायिक मतभेदों ने आगे चलकर दंगों का रूप ले लिया। पर सामाजिक विज्ञान का मकसद समाज में होने वाले वाले हर परिवर्तन का सुक्ष्म अवलोकन करना है। गौ रक्षा जैसे संगठन ने यादव जैसी पिछड़ी जाति को गोलबंद करने में सफलता हासिल की। जातीय श्रेणीक्रम में खुद को तथाकथित क्षत्रिय बताने की होड़ में यादव गौ रक्षा जैसे आंदोलनों में पहली कतार में शामिल हो गए। कुर्मी और कोयरी जैसी मजबूत पिछड़ी जातियां भी क्षत्रिय होने का दावा कर रही थीं। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों के बिहार में ऐसे भी जातीय सभाओं का दौर था। तथाकथित स्वर्ण जातियों की देखा देखी दलित, पिछड़े और आदिवासियों ने भी जातीय सभाओं का गठन करना शुरू कर दिया। वे अब ऊंची जातियों के तौर तरीके, रीति रिवाज, रहन सहन को अपनाने लगे। वे भी अपनी स्त्रियों को बाहर कार्य करने से रोकने लगे। समाजशास्त्री एम एन श्रीनिवास के शब्दों में कहे तो उनका संस्कृतिकरण हो रहा था।[(17)] आर्य समाज आंदोलन ने उनके प्रयासों के साथ एकजुटता दिखाया। हालांकि गौरक्षा, शुद्धि, स्त्रियों की बाहर जाने की आजादी पर प्रतिबंध जैसे सांप्रदायिक, विघटनकारी, पितृसत्तात्मक और रूढ़िवादी प्रयासों को कही से भी न्याय संगत नहीं कहा जा सकता। न ही ये महात्मा फुले और बाबा साहब आंबेडकर की सामाजिक क्रांति के आमूलचूल परिवर्तन से संबंध रखता है। परंतु औपनिवेशिक शासन काल में दलित और पिछड़ी जातियों का जातीय श्रेणीक्रम में खुद को ऊपर उठाने का प्रयास एक युगांतरकारी घटना है। क्योंकि सदियों से शोषित वंचित वर्ग औपनिवेशिक कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवर्तन के फलस्वरूप अपनी स्थिति को बदलने के लिए उठ खड़ा हुआ। आगे चलकर आर्य समाज के नेतृत्व में पिछड़ी जातियों के जनेऊ पहनने का आंदोलन भी इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। और इस जनेऊ आंदोलन से जुड़ा अविभाजित मुंगेर का लाखोचक दंगा बहुजन चेतना के उभार की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। जिसने आगे चलकर बिहार के तीन प्रमुख पिछड़ी जातियों यादव, कोयरी और कुर्मी को एकजुट होकर त्रिवेणी संग बनाने के लिए प्रेरित किया।

औपनिवेशिक काल में लाखोचक मुंगेर के लखीसराय अनुमंडल में स्थित एक गांव था। लाखोचक दंगे की पृष्ठभूमि की जांच बेहद आवश्यक हैं। बहुजन चेतना के विकास में लाखोचक दंगा एक मील का पत्थर साबित हुआ। लाखोचक में यादवों ने द्विजो की तरह जनेऊ धारण करने का निर्णय लिया और अपनी जाति की सभा बुलाई। बगल के भूमिहारों को यह नागवार गुजरा। प्रसन्न कुमार चौधरी और श्रीकांत अपनी किताब 'बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम' में लिखते हैं कि, "26 मई 1925 को लाखोचक में अपशकुन के अंदेशे के बीच भी उत्सव का माहौल था। पूरे जवार के ग्वाले गांव के पुरबारी बगीचे में जमा हो रहे थे। शाम साढ़े पांच बजे तक हजार डेढ़ हजार ग्वाले आ पहुंचे थे और विभिन्न दिशाओं और गांवों से दल बांधे सैकड़ों लोग अभी आ ही रहे थे। अगले दिन होनेवाले इस ग्वाला सभा में सभी को सामूहिक रूप से जनेऊ धारण करना था। बेगारी तथा जमींदारी की अन्य मनमानियों के बारे में राय मशविरा भी होना था। अपशकुन का अंदेशा इसलिए था कि गांव के जमींदार प्रसिद्ध नारायण सिंह के नेतृत्व में बाभन इस ग्वाला सभा को बलपूर्वक रोकने की धमकी दे चुके थे। अहीरों को ठंडा करने के लिए कुछ भी करने पर आमादा बाभनों की भीड़ भी प्रसिद्ध नारायण सिंह की कचहरी पर जमा हो रही थी"।[(18)] इसी किताब में आगे वर्णन किया गया है कि मुंगेर जिले के ग्वाला सभा के पंच शीतलदास महतो ने लाखोचक में होने वाले ग्वाला सभा और उसपर भूमिहारों के हमले की सूचना संबंधी सनहा थाने में दर्ज कराया था। पर फिर भी जातीय गौरव के मिथ्याभिमान में चूर और अपने विशेषाधिकारों को चुनौती मिलते देख भूमिहार आपे से बाहर हो गए। प्रसिद्ध नारायण सिंह के नेतृत्व में भूमिहारों की भीड़ ने

यादवों की सभा पर हमला कर दिया। कहा जाता है कि हमलावर भीड़ की संख्या हजारों में थी। त्रिलोकी यादव ने यादवों की ओर से मोर्चा संभाला और हमलावरों को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। स्थानीय लोककथाओं में उन्हें वीर की उपाधि दी गई और उन्हें आज भी यादवों के सामाजिक सम्मान के रक्षक के रूप में देखा जाता है। उनके साथ गोइदु पहलवान और शिवदयाल पहलवान जैसे लड़ाके भी थे जो इस दंगे में शहीद हो गए। यादवों ने जमींदार प्रसिद्ध नारायण सिंह के हाथी को मार गिराया। माना जाता हैं कि यह बिहार का पहला दंगा था जिसमें बहुजन और स्वर्ण जातियों का हिंसक टकराव हुआ। लाखोचक दंगा निश्चित तौर पर औपनिवेशिक काल में हुए धार्मिक, सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक और सांस्कृतिक संरचना के बदलाव से संबंधित हैं। आखिर क्या वजह थी कि दलित और पिछड़ी जातियों में जनेऊ धारण करने की होड़ लग गई ? वे क्यों जातीय श्रेणीक्रम में खुद को ऊपर उठाना चाहते थे ? इन सब का जवाब जमींदारी व्यवस्था में रैयतों के जाति आधारित शोषण में छिपा है। दलित और पिछड़ी जातियों के रैयतों से उच्च जाति के रैयतों की तुलना में ज्यादा लगान लिया जाता था। जाति आधारित लगान के अतिरिक्त भी जाति आधारित अबवाब लिए जाते थे। जमींदारी व्यवस्था में जाति आधारित शोषण ही जनेऊ आंदोलन और लाखोचक दंगा का मूल कारण था। प्रसन्न कुमार चौधरी और श्रीकांत अपनी किताब 'बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम' में लिखते हैं कि, "इस जाति आधारित लगान के विरोध का स्वरूप क्या था ? अगर सामाजिक सोपान में ऊंची स्थिति का मतलब था कम लगान तो जाहिर है, पिछड़ी जातियाँ सर्वप्रथम सामाजिक सोपान में अपनी ऊंची स्थिति का दावा पेश करेंगी। और उन दिनों जनेऊ धारण कर तथा खुद को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय घोषित कर वे यही कर रही थीं। जाति लगान आर्थिक अतिशोषण था जिसके निश्चित सामाजिक आयाम थे। वहीं जनेऊ आंदोलन एक सामाजिक आंदोलन था जिसके निश्चित आर्थिक आयाम थे। जाति लगान बनाम जनेऊ आंदोलन उन दिनों के बिहार की विशिष्ट लाक्षणिकता थी"।[19]

यह दंगा तत्कालीन मुंगेर जिले के एक गांव में जरूर हुआ पर इसे क्षेत्रीय घटना के रूप में नहीं देखा जा सकता। इस दंगे से जुड़े चेतना का इतिहास महात्मा फुले और स्वामी दयानंद सरस्वती के समाज सुधार आंदोलन से जुड़ा हुआ हैं। लाखोचक दंगा से भी 50 वर्ष पहने 1875 ईस्वी में स्वामी दयानंद सरस्वती पुणे में जब अपने सुधारवादी आंदोलन का प्रचार करने आए तो उन्हें कट्टरपंथी रूढ़िवादी ब्राह्मणवादियों का विरोध झेलना पड़ा था। स्वामी जी की शोभायात्रा पर कट्टरपंथियों ने कीचड़ और पत्थर फेंके। महात्मा फुले हालांकि स्वामी दयानंद सरस्वती से वैचारिक रूप से सहमत नहीं थे। पर उन्होंने कहा कि एक समाज सुधारक पर हमला पूरे सुधार आंदोलन पर हमला है। उन्होंने सत्य शोधक समाज के कार्यकर्ताओं को स्वामी जी की सुरक्षा में तैनात किया। उन्नीसवीं सदी के भारत में ऐसे कौन से सामाजिक धार्मिक चिंतनधारा में बदलाव हुए जिसके कारण महात्मा फुले और स्वामी दयानंद सरस्वती को परंपरावादियों का तीव्र विरोध झेलना पड़ा। इसका जवाब जॉन निकोल अपनी किताब मॉडर्न रिलीजियस मूवमेंट्स इन इंडिया में देते है। वे लिखते हैं कि लगभग 1870 ईस्वी में हिंदू स्पिरिट में एक बड़ा बदलाव दिखने लगा। वे स्वामी दयानंद सरस्वती के कथन का उद्धरण देते हैं जो इस प्रकार हैं, "मुझे लगता है कि एक सबसे ताकतवर, जिंदा भगवान के विचार को इस मूर्ति के साथ मिलाना नामुमकिन है, जो चूहों को अपने शरीर पर दौड़ने देती हैं"।[20] यह कथन औपनिवेशिक काल में चिंतन धारा कि प्रक्रिया में आए बदलाव को समझने में हमारी सहायता करता है। गुजरात के मोरवी में जन्में स्वामी जी की सहायता महाराष्ट के पुणे में जन्में महात्मा फुले सुधार आंदोलन की एकता के नाम पर कर रहे थे और आगे चलकर स्वामी जी का आर्य समाज आंदोलन बिहार में बहुजनों के बीच जनेऊ आंदोलन की नींव डाल रहा था। तो हम देख सकते हैं कि कैसे राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रगतिशील चिंतन धारा विकसित हो रही थीं। जो बहुजन समाज को जगाने में सहायक साबित हो रहा है। वंचित और शोषित समाज की चेतना जब जाग जाती है तो वो अपने आस पास की सारे अन्याय और असमानताओं के खिलाफ उठ खड़ा होता है। जनेऊ पहनकर क्षत्रिय बनने का आंदोलन जमीन से जुड़े शोषण के खिलाफ संघर्ष में बदलने लगा। बेगारी और शोषणपूर्ण करों के खिलाफ भी

दलित और पिछड़े जाति के किसान गोलबंद होने लगे। इस तरह से स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्य समाज आंदोलन ने बिहार में जनेऊ आंदोलन के साथ साथ किसान आंदोलन की भी बुनियाद रखी। इस आंदोलन से तथाकथित स्वर्ण जाति के लोगों में इतनी बेचैनी व्याप्त थी कि वे इसे अपने विशेषाधिकार के लिए सबसे प्रमुख चुनौती के रूप में देखने लगे। इसी का परिणाम लाखोचक दंगा के रूप में सामने आया। आधुनिक शिक्षा और प्रगतिशील विचारों ने औपनिवेशिक कालीन भारत में सुधारों की कई चिंतन धारा का विकास किया जिससे अंतोगत्वा एक बहुजन चेतना का उभार हुआ।

संदर्भ

1. आर.के. दिवाकर, बिहार थ्रू द एजेस, ओरिएंट लॉन्गमंस, दिल्ली, 1958, पृष्ट 584
2. नंदलाल चटर्जी, मीर कासिम नवाब ऑफ बंगाल, 1760-1763, द इंडियन प्रेस एलटीडी, इलाहाबाद,1935, पृष्ठ 246
3. पी. सी. राय चौधरी, मुंगेर गजेटियर, सुपरिटेंडेंट सेक्रेटेरिएट प्रेस, पटना,1960, पृष्ठ 31
4. जोज़फ अर्नाल्ड ट्वानबी, ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1946, पृष्ट 72
5. शेखर बंदोपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2006, पृष्ठ 66
6. कांचा इलाइया, शूद्र विद्रोह : ताकि बन सके आत्मनिर्भर भारत, फॉरवर्ड प्रेस, नई दिल्ली,2025, पृष्ठ XIII
7. अनुपमा राव, जाति का प्रश्न: दलित और आधुनिक भारत की राजनीति, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, कैलिफोर्निया, 2009, पृष्ठ 48
8. पी. सी. राय चौधरी, मुंगेर गजेटियर, सुपरिटेंडेंट सेक्रेटेरिएट प्रेस, पटना ,1960, पृष्ठ 417
9. नितिन सिन्हा, रेलवे इंपीरियलिजम. ए स्मॉल टाऊन पर्सपेक्टिव ऑन ग्लोबल हिस्ट्री, जमालपुर, 1860-1900, पृष्ठ 18
10. पी. सी. राय चौधरी, मुंगेर गजेटियर, सुपरिटेंडेंट सेक्रेटेरिएट प्रेस, पटना ,1960, पृष्ठ 418
11. वही, पृष्ठ 418
12. वही, पृष्ठ 418
13. वही, पृष्ठ 418
14. वही, पृष्ठ 419
15. वही, पृष्ठ 420
16. वही, पृष्ठ 420
17. एम. एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में जाती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 49
18. प्रसन्न कुमार चौधरी/ श्रीकांत, बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 74
19. वही, पृष्ठ 69
20. जॉन निकोल, मॉडर्न रिलीजियस मूवमेंट्स इन इंडिया, मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1914, पृष्ठ 103

वाराणसी की शहरी झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य जागरूकता और सामाजिक कार्यकर्ताओं की प्रभावशीलता का अध्ययन

विशाल कुमार सिंह*

सारांश

स्वास्थ्य जागरूकता किसी भी समाज के समग्र विकास और नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। भारत के शहरी क्षेत्रों में झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग स्वास्थ्य संसाधनों, जानकारी और सेवाओं से अक्सर वंचित रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप रोगों की उच्च दर और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ सामने आती हैं। वाराणसी, जो धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण नगर है, यहाँ की झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्ग से आते हैं।

इस शोध का उद्देश्य इन क्षेत्रों में सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका और उनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना है। अध्ययन में प्राथमिक डेटा संग्रहण के लिए प्रश्नावली और साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया, जिसमें झुग्गी बस्तियों के 150 परिवारों और 10 सामाजिक कार्यकर्ताओं को शामिल किया गया। प्रश्नावली के माध्यम से स्वास्थ्य जागरूकता, टीकाकरण, पोषण, स्वच्छता और रोग निवारण से संबंधित जानकारी एकत्र की गई।

अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि सामाजिक कार्यकर्ता झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य शिक्षा और जागरूकता फैलाने में केंद्रीय भूमिका निभा रहे हैं। विशेष रूप से टीकाकरण, पोषण, और स्वच्छता के क्षेत्रों में उनकी प्रभावशीलता स्पष्ट रूप से देखी गई। हालांकि, मानसिक स्वास्थ्य, बुजुर्गों की देखभाल और जटिल रोगों की जागरूकता के क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रयास न केवल स्वास्थ्य जानकारी देने तक सीमित हैं, बल्कि समुदाय में व्यवहार परिवर्तन, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच बढ़ाने और जीवन गुणवत्ता में सुधार लाने में भी योगदान करते हैं। शोध के परिणाम नीतिगत सुझावों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, जिससे शहरी झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य जागरूकता और स्वास्थ्य सेवा वितरण में सुधार संभव हो सकता है।

शब्द कुंजीः स्वास्थ्य जागरूकता, सामाजिक कार्यकर्ता, झुग्गी बस्ती, वाराणसी, शहरी स्वास्थ्य, व्यवहार परिवर्तन

प्रस्तावना

स्वास्थ्य किसी भी समाज और राष्ट्र के विकास का मूल आधार है। यह केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ होने तक सीमित नहीं है, बल्कि मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित करता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, स्वास्थ्य को "केवल रोग या दुर्बलता की अनुपस्थिति" नहीं बल्कि पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण के रूप में परिभाषित किया गया है। यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि स्वास्थ्य जागरूकता केवल बीमारी से बचाव तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि जीवनशैली, पोषण, स्वच्छता और सामुदायिक स्वास्थ्य सेवा तक फैली हुई होनी चाहिए।

भारत में तेजी से बढ़ता शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि और ग्रामीण–शहरी प्रवास ने शहरी क्षेत्रों में झुग्गी बस्तियों की संख्या में वृद्धि की है। शहरी झुग्गी बस्तियाँ आर्थिक रूप से कमजोर, सामाजिक रूप से पिछड़े और संसाधनों की दृष्टि से सीमित समुदायों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन्हें अक्सर अधूरी बुनियादी सुविधाएँ, स्वच्छता की कमी, जल संकट, और स्वास्थ्य सेवाओं तक असमान पहुँच जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस कारण झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग संक्रामक रोगों, पोषण की कमी और अन्य स्वास्थ्य संबंधी जोखिमों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं।

1. वाराणसी का सामाजिक और भौगोलिक संदर्भ

वाराणसी, भारत का एक ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर है। यह शहर गंगा नदी के किनारे बसा हुआ है और इसे हिंदू धर्म का एक प्रमुख तीर्थस्थल माना जाता है। वाराणसी में शहरी झुग्गी बस्तियों का बड़ा हिस्सा मुख्यतः नदी के किनारे और पुराने शहर के गलियों में फैला हुआ है। इन बस्तियों में रहने वाले लोग मुख्यतः निम्न और मध्य वर्ग के हैं, जिनकी आय अस्थायी रोजगार, दैनिक मजदूरी और छोटे व्यवसायों पर निर्भर करती है।

* सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य, महादेव पी.जी. कॉलेज, बरियासनपुर, वाराणसी

इन क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ, जैसे कम आय, शिक्षा की कमी और सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं की पहुँच की सीमाएँ, लोगों की स्वास्थ्य स्थिति पर गहरा प्रभाव डालती हैं। इसके परिणामस्वरूप शिशु मृत्यु दर, पोषण की कमी, संक्रामक रोगों का प्रसार और स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता का अभाव अधिक दिखाई देता है।

2. स्वास्थ्य जागरूकता की आवश्यकता

स्वास्थ्य जागरूकता का अर्थ केवल बीमारियों के लक्षण जानना या उपचार के तरीके समझना नहीं है। यह व्यक्तिगत और सामुदायिक स्तर पर स्वास्थ्य सुधार के लिए जरूरी जानकारी और व्यवहार को अपनाने की क्षमता है। इसमें निम्नलिखित पहलुओं को शामिल किया जा सकता है:

1. **टीकाकरण:** बच्चों और वयस्कों को बीमारियों से बचाने के लिए नियमित टीकाकरण का महत्व।
2. **पोषण और आहार:** स्वस्थ जीवन के लिए संतुलित पोषण और बच्चों, गर्भवती महिलाओं और बुजुर्गों के लिए आवश्यक खाद्य तत्वों की जानकारी।
3. **स्वच्छता और स्वच्छ वातावरण:** घरेलू स्वच्छता, पीने के पानी की स्वच्छता और सुलभ शौचालय सुविधाओं का महत्व।
4. **रोग निवारण और प्रारंभिक पहचान:** बीमारियों की प्रारंभिक पहचान और समय पर उपचार।
5. **मानसिक स्वास्थ्य:** तनाव, चिंता और अवसाद जैसी समस्याओं के प्रति जागरूकता।

जांच अध्ययनों से पता चलता है कि झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों में स्वास्थ्य जागरूकता का स्तर बहुत कम है। यह न केवल उनकी जीवन गुणवत्ता को प्रभावित करता है, बल्कि समाज और राज्य के स्वास्थ्य संसाधनों पर भी दबाव डालता है।

3. सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका

सामाजिक कार्यकर्ता (Social Workers) वे पेशेवर होते हैं जो समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों तक स्वास्थ्य, शिक्षा, और सामाजिक सेवाएँ पहुँचाने का काम करते हैं। झुग्गी बस्तियों में सामाजिक कार्यकर्ता निम्नलिखित कार्य करते हैं:

1. **स्वास्थ्य शिक्षा:** टीकाकरण, पोषण, स्वच्छता और रोग निवारण के लिए सामुदायिक स्तर पर जागरूकता अभियान।
2. **स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच:** सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं, स्वास्थ्य शिविरों और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तक लोगों की पहुँच सुनिश्चित करना।
3. **व्यवहार परिवर्तन:** लोगों को स्वस्थ जीवनशैली अपनाने और स्वच्छता, पोषण और नियमित स्वास्थ्य जांच के प्रति प्रेरित करना।
4. **समुदाय में विश्वास बनाना:** लोगों के साथ संवाद स्थापित करना ताकि स्वास्थ्य संबंधी संदेश प्रभावी रूप से पहुँच सके।

अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि सामाजिक कार्यकर्ता न केवल स्वास्थ्य सेवाओं की जानकारी देते हैं, बल्कि समुदाय में सकारात्मक व्यवहार परिवर्तन लाने में भी मदद करते हैं।

4. समस्या का कथन

वाराणसी की झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य समस्याएँ व्यापक हैं। इसमें शामिल हैं:

- **संक्रामक रोगों का प्रसार:** जैसे टाइफाइड, हैजा और डायरिया।
- **पोषण की कमी:** बच्चों और गर्भवती महिलाओं में आयरन और विटामिन की कमी।
- **टीकाकरण में कमी:** बच्चों और महिलाओं का अपूर्ण टीकाकरण।
- **मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ:** तनाव और अवसाद के बढ़ते मामले।

इन समस्याओं का मुख्य कारण स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच में कमी, जागरूकता की कमी और सामाजिक कलंक हैं।

5. अध्ययन का महत्व

- झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों में स्वास्थ्य जागरूकता का स्तर मापता है।
- यह मूल्यांकन करता है कि सामाजिक कार्यकर्ता स्वास्थ्य सुधार में कितने प्रभावी हैं।
- नीति निर्माताओं, NGOs और सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं के लिए सकारात्मक सुझाव प्रदान करता है।

6. अध्ययन की सीमाएँ और चुनौतियाँ

- डेटा संग्रह के दौरान भाषा और संवाद की बाधाएँ।
- झुग्गी बस्तियों की संख्यात्मक और भौगोलिक विविधता।
- मानसिक स्वास्थ्य और गंभीर रोगों की जागरूकता को मापने में कठिनाई।
- सीमित संसाधनों और समय की वजह से व्यापक अध्ययन की सीमा।

इन चुनौतियों के बावजूद, यह शोध सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रयासों और उनकी प्रभावशीलता के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. वाराणसी की झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों में स्वास्थ्य जागरूकता के स्तर को मापना।
2. यह अध्ययन करना कि सामाजिक कार्यकर्ता किस प्रकार स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान कर रहे हैं।
3. स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ाने में सामाजिक कार्यकर्ताओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

साहित्य समीक्षा

स्वास्थ्य जागरूकता और सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका पर किये गए पूर्व शोध इस विषय की गहन समझ प्रदान करते हैं। साहित्य समीक्षा के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि शहरी झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य सेवाओं और जानकारी की कमी किस प्रकार लोगों के जीवन को प्रभावित करती है और सामाजिक कार्यकर्ता इसे सुधारने में किस हद तक सक्षम हैं।

1. झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य जागरूकता पर अध्ययन

Sharma और Singh (2018) के अध्ययन में भारत के विभिन्न शहरों की झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों में टीकाकरण, पोषण और स्वच्छता के प्रति जागरूकता का विश्लेषण किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि झुग्गी बस्तियों में रहने वाले अधिकांश लोग स्वास्थ्य संबंधी जानकारी में कमजोर हैं। विशेषकर बच्चों के टीकाकरण और गर्भवती महिलाओं के पोषण के प्रति जागरूकता का स्तर बहुत कम पाया गया। इसके कारण संक्रामक रोगों और पोषण संबंधी समस्याओं की दर अधिक पाई गई। अध्ययन ने यह भी इंगित किया कि स्वास्थ्य जागरूकता की कमी मुख्यतः आर्थिक पिछड़ेपन, शिक्षा की कमी और सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच में असमानता के कारण है।

Singh और Verma (2019) ने उत्तर भारत की झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच का अध्ययन किया। उनके अध्ययन में पाया गया कि झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग अस्पताल और स्वास्थ्य केंद्रों तक पहुँचने में कठिनाई महसूस करते हैं। इसका कारण दूरी, आर्थिक संसाधनों की कमी, और स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति विश्वास की कमी है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि स्वास्थ्य जागरूकता केवल जानकारी देने तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि लोगों को सेवाओं तक पहुँचने में सहायता करना भी आवश्यक है।

2. सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका

Gupta (2019) ने सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका पर एक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया। उनके अध्ययन के अनुसार सामाजिक कार्यकर्ता झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य जागरूकता फैलाने, टीकाकरण अभियान आयोजित करने, पोषण संबंधी शिक्षा देने और स्वच्छता बनाए रखने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं की स्थानीय भाषा और सांस्कृतिक समझ के कारण वे समुदाय के लोगों के साथ विश्वास स्थापित कर पाते हैं, जो स्वास्थ्य संदेशों को प्रभावी बनाता है।

Patil et al. (2020) ने सामाजिक कार्यकर्ताओं और शहरी झुग्गी बस्तियों के बीच व्यवहार परिवर्तन मॉडल की समीक्षा की। अध्ययन में पाया गया कि सामाजिक कार्यकर्ता केवल सूचना देने के बजाय लोगों के व्यवहार में सकारात्मक बदलाव लाने में सक्षम हैं। उदाहरण के लिए, बच्चों का टीकाकरण बढ़ाना, परिवारों में संतुलित आहार अपनाना और घरेलू स्वच्छता बनाए रखना सामाजिक कार्यकर्ताओं की पहल से संभव हुआ।

इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि सामाजिक कार्यकर्ताओं का योगदान केवल स्वास्थ्य जानकारी देने तक सीमित नहीं है, बल्कि उनका कार्य व्यवहार परिवर्तन और स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच में सुधार तक फैला हुआ है।

कार्यप्रणाली

अध्ययन के लिए प्राथमिक और द्वितीयक डेटा का प्रयोग किया गया।

प्राथमिक डेटाः

1. स्थानः वाराणसी की पांच प्रमुख झुग्गी बस्तियाँ

2. सैंपल आकारः 150 परिवार

3. डेटा संग्रह विधिः

- **प्रश्नावलीः स्वास्थ्य ज्ञान, टीकाकरण, पोषण, स्वच्छता**
- **साक्षात्कारः** सामाजिक कार्यकर्ताओं और समुदाय के सदस्यों से

द्वितीयक डेटाः

- पत्रिकाओं, सरकारी रिपोर्टों, और प्रकाशित शोध पत्रों से स्वास्थ्य जागरूकता और सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका के बारे में जानकारी

आंकड़ों का विश्लेषणः

डेटा को SPSS और Excel का उपयोग करके सांख्यिकीय रूप से विश्लेषित किया गया।

सारणी 1: परिवारों में स्वास्थ्य जागरूकता का स्तर

जागरूकता स्तर	परिवार संख्या	प्रतिशत (%)
उच्च	35	23.3
मध्यम	70	46.7
निम्न	45	30

सारणी 2: सामाजिक कार्यकर्ता की गतिविधियों में शामिल क्षेत्रों का वितरण

गतिविधि	परिवारों की संख्या	प्रतिशत (%)
टीकाकरण जानकारी	120	80
पोषण शिक्षा	100	66.7
स्वच्छता प्रशिक्षण	90	60
स्वास्थ्य शिविर आयोजन	75	50

परिणाम

1. लगभग 70% परिवारों ने माना कि सामाजिक कार्यकर्ता ने उन्हें स्वास्थ्य संबंधी जानकारी दी।
2. टीकाकरण और पोषण पर जागरूकता सबसे अधिक थी, जबकि मानसिक स्वास्थ्य और रोग निवारण की जानकारी कम थी।
3. सामाजिक कार्यकर्ता समुदाय के विश्वास पात्र बने हुए हैं और उनका योगदान स्वास्थ्य व्यवहार में बदलाव लाने में प्रभावी है।

चर्चा

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि सामाजिक कार्यकर्ता न केवल स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करते हैं बल्कि व्यवहार परिवर्तन और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

- **टीकाकरण:** सामाजिक कार्यकर्ताओं ने जागरूकता बढ़ाकर बच्चों के टीकाकरण दर में सुधार किया।
- **स्वच्छता:** घरों और बस्तियों में स्वच्छता बनाए रखने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया गया।
- **पोषण:** गर्भवती महिलाओं और बच्चों के लिए पोषण संबंधी जानकारी साझा की गई।

हालांकि, मानसिक स्वास्थ्य, एचआईवी/एड्स जागरूकता और बुजुर्गों की स्वास्थ्य समस्याओं पर कार्यकर्ताओं का प्रभाव कम पाया गया। इसका कारण इन विषयों पर कम प्रशिक्षण और सामाजिक कलंक हो सकता है।

निष्कर्ष

वाराणसी के झुग्गी बस्तियों में सामाजिक कार्यकर्ता स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ाने में केंद्रीय भूमिका निभा रहे हैं। उनके प्रयासों से टीकाकरण, पोषण, और स्वच्छता में सुधार हुआ है।

शोध से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका केवल जानकारी देने तक सीमित नहीं है, बल्कि समुदाय में व्यवहार परिवर्तन, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और जीवन गुणवत्ता में सुधार में भी महत्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ सूची :–

- Gupta, R. (2019). *Role of social workers in health awareness: A study in urban slums*. Journal of Community Health, 14(2), 45–60.
- Patil, S., Sharma, A., & Verma, P. (2020). *Community health awareness and behavior change in Indian slums*. Indian Journal of Social Work, 81(1), 77–92.
- Singh, R., & Verma, P. (2019). *Access to health services in urban slums of North India: Challenges and opportunities*. **Indian Journal of Community Health, 31**(2), 145–152.
- Sharma, V., & Singh, K. (2018). *Health literacy in urban slum populations: Challenges and strategies*. International Journal of Public Health, 63(3), 323–330.
- Government of India. (2022). *National Urban Health Mission: Annual Report*. Ministry of Health and Family Welfare, New Delhi.
- Rao, S., & Kulkarni, M. (2021). *Effectiveness of community health workers in slum areas: Evidence from India*. **Journal of Urban Health, 98**(4), 560–572.
- World Health Organization. (2018). *Urban health: Slum health interventions and strategies*. Geneva: WHO.
- UNICEF. (2019). *Improving child health outcomes in urban slums: The role of community workers*. New Delhi: UNICEF India.
- Agarwal, P., & Mehta, R. (2020). *Barriers to health service access in Indian urban slums: A qualitative study*. **Indian Journal of Public Health Research & Development, 11**(5), 102–110.

◀◀ ▶▶

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अनुशंसाओं का आलोचनात्मक अध्ययन

मल्लिका*
प्रवीण कुमार तिवारी**

प्रस्तावना

भारतीय शिक्षा-दर्शन की परंपरा अत्यंत प्राचीन और बहुआयामी रही है, जिसमें ज्ञान, नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के समन्वित विकास को प्रमुख लक्ष्य माना गया है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक शिक्षा को केवल सूचना या कौशल अर्जन का साधन नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और समाज के सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का माध्यम माना गया है। इसे राष्ट्र के समग्र विकास का माध्यम माना गया है। प्राचीन भारतीय गुरुकुल प्रणाली से लेकर आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था तक यह विचार निरंतर विकसित होता रहा है कि शिक्षा मनुष्य के बाह्य और आंतरिक दोनों आयामों को संतुलित रूप से विकसित करे। इस प्रक्रिया में अनेक भारतीय चिंतकों ने शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों और मूल्यों पर अपने विशिष्ट विचार प्रस्तुत किए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ऐसे ही प्रमुख विचारकों में सम्मिलित हैं, जिन्होंने 'एकात्म मानववाद' के माध्यम से शिक्षा को राष्ट्र-निर्माण, सांस्कृतिक चेतना और नैतिक मूल्यों के संवर्धन का सशक्त माध्यम माना। दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचार भारतीय जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक आत्मबोध और मानव-केंद्रित विकास की अवधारणा पर आधारित हैं। उनके अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगारपरक दक्षता प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व और राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करना है। वे मानते थे कि शिक्षा यदि केवल भौतिकवादी दृष्टिकोण तक सीमित रह जाए तो वह समाज के आध्यात्मिक और नैतिक आधार को कमजोर कर सकती है। इसीलिए उन्होंने भारतीयता-आधारित शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता पर बल दिया, जिसमें स्थानीय ज्ञान, संस्कृति, भाषा और मूल्य-व्यवस्था को केंद्रीय स्थान मिले(उपाध्याय, 2016, खंड 3, पृ० 205-230)। इस दृष्टि से उनका शिक्षा-विचार भारतीयता और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

आधुनिक भारत में, विशेष रूप से स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा संबंधी विमर्श नई राष्ट्रीय आवश्यकताओं, सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा वैश्विक परिवर्तनों के संदर्भ में विकसित हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में शिक्षा-व्यवस्था को राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्गठित करने के लिए विभिन्न शिक्षा आयोगों और नीतियों का निर्माण किया गया। नीति निर्माण की यह प्रक्रिया समय-समय पर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों से प्रभावित रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस क्रम में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इसकी अनुशंसा में शिक्षा के लोकतंत्रीकरण, समावेशन, कौशल विकास और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को महत्व दिया गया है तथा शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का प्रमुख साधन माना गया है और इसे सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक प्रगति के साथ जोड़ा गया है। नीति में समग्र विकास, बहुभाषिकता, भारतीय ज्ञान-परंपरा और मूल्य-आधारित शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020, पृ० 1-4)। किंतु यह प्रश्न भी उठता है कि क्या इसका वैचारिक आधार भारतीय शिक्षा-दर्शन से पर्याप्त रूप से जुड़ा हुआ है अथवा वे पश्चिमी शिक्षा-दृष्टि से अधिक प्रभावित हैं। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि इन नीतिगत अनुशंसाओं का अध्ययन भारतीय चिंतकों के

* **शोधार्थी, फैकेल्टी ऑफ एजुकेशन एण्ड एलायड साइंसेज, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली**
** **आचार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय**

शिक्षा-दर्शन के आलोक में किया जाए, ताकि शिक्षा-नीति के वैचारिक आधार को अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सके। इस शोध कार्य का उद्देश्य पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मध्य वैचारिक संबंधों, साम्यताओं और अंतर्विरोधों को समझना है।

1.1 संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

कुलकर्णी (2014) द्वारा पंडित जी की एकात्म आर्थिक नीति पर चर्चा पूंजीवाद, साम्यवाद और समाजवाद जैसे प्रसिद्ध सिद्धांतों के आधार पर की गई। उन्होंने पंडित जी के विचारों की प्राथमिकताओं यथा, कृषि, आत्मनिर्भरता, औद्योगीकरण और अन्य उपायों पर भी बल दिया है।

केलकर (1986) ने पंडित जी के विचार दर्शन (खंड-3) में भारतीय जनसंघ के जन्म और विकास की कहानी के साथ राष्ट्रीय जीवन के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं।

गुप्ता (2015) 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी और उनके चिंतन कृति' का अध्ययन करते हुए कहते हैं कि दीनदयाल उपाध्याय जी शिक्षा और संस्कृति में कोई अंतर नहीं मानते थे, दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू समझते थे। शिक्षा संस्कृति की आधारशिला है। संस्कृति वह पुण्य है जिसका सिंचन शिक्षा के माध्यम से होता है। उनका मानना था कि हमारे प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण, संवर्धन एवं हस्तांतरण शिक्षा के माध्यम से ही संभव है।

रमनि (2025) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि उपाध्याय जी की शिक्षा-दृष्टि भारतीय समाज की सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी हुई है और शिक्षा को राष्ट्रीय पुनर्जागरण का माध्यम मानती है।

शर्मा (2025) ने कहा कि कई अध्ययनों में यह उल्लेख मिलता है कि उनका शिक्षा-दर्शन 'एकात्म मानववाद' पर आधारित है, जिसमें मानव जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों आयामों को समान महत्व दिया गया है।

सिंह (2018) ने कहा कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी शिक्षा के माध्यम से मनुष्य का चारित्रिक विकास करना चाहते थे। उनका मानना यह था कि शिक्षा ही चरित्र का निर्माण कर सकती है।

ऐथल एवं ऐथल (2020) ने अपने अध्ययन में बताया कि नीति का उद्देश्य समग्र शिक्षा, बहुविषयक दृष्टिकोण और कौशल-आधारित शिक्षण को बढ़ावा देना है।

चोपरा एवं पांडे (2023) ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के व्यावहारिक पक्षों और उच्च शिक्षा में संभावित प्रभावों का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार नीति शिक्षा को अधिक लचीला और विद्यार्थी केंद्रित बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

येनुगु (2022) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह कहा कि कुछ शोध अध्ययनों में यह भी कहा गया है कि नीति के क्रियान्वयन में संसाधनों की कमी, शिक्षक प्रशिक्षण और डिजिटल अवसंरचना जैसी चुनौतियाँ सामने आ सकती हैं।

प्रस्तुत साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति और पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शिक्षा-दर्शन पर अलग-अलग अध्ययन तो उपलब्ध हैं।

एक ओर दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षणिक विचारों पर आधारित शोध कार्य सिर्फ उनके विचारों का वर्णनात्मक विश्लेषण करते हैं वहीं दूसरी ओर शिक्षा नीति पर आधारित शोध कार्य मुख्यतः नीति के संरचनात्मक और प्रशासनिक पहलुओं पर बल देते हैं। नीति के दार्शनिक आधार पर सीमित चर्चा हुई है तथा दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षणिक विचार एवं शिक्षा नीतियों के मध्य आलोचनात्मक संवाद स्थापित करने वाले शोध अपेक्षाकृत कम हैं।

1.2 अध्ययन की आवश्यकता एवं औचित्य

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचार भारतीय जीवन-दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों से प्रेरित हैं। वे शिक्षा के नैतिक और सांस्कृतिक पक्ष को केंद्र में रखते हैं। उन्होंने शिक्षा को राष्ट्रनिर्माण और चरित्र निर्माण का माध्यम माना। वर्तमान समय में जब, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा-दर्शन की उस परंपरा, जिसमें शिक्षा केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि मानव जीवन के समग्र विकास का साधन है, को पुनर्स्थापित करने का प्रयास कर रही है तब उपाध्याय जी के विचारों के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अनुशंसाओं को उनके विचारों के संदर्भ में परखना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि यह समझा जा सके कि आधुनिक नीति-निर्माण भारतीय चिंतन-परंपरा से किस हद तक जुड़ा हुआ है। यह अध्ययन शिक्षा-नीति के वैचारिक आधार को स्पष्ट करने और उसके संभावित अंतर्विरोधों को सामने लाने में सहायक होगा। इस प्रकार, पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अनुशंसाओं का आलोचनात्मक अध्ययन वर्तमान समय की एक अनिवार्य शैक्षिक आवश्यकता है।

1.3 समस्या कथन

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अनुशंसाओं का आलोचनात्मक अध्ययन

1.4 शोध प्रश्न

प्रस्तुत शोध अध्ययन को निम्नलिखित शोध प्रश्न के आलोक में संचालित किया गया है :

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की प्रमुख अनुशंसाओं की क्या स्थिति है?

1.5 अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

- पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अनुशंसाओं की समालोचना प्रस्तुत करना

1.6 शोध विधि

प्रस्तुत शोध गुणात्मक प्रकार का है। अतः, इस शोध कार्य के संचालन के लिए विषयवस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया है।

1.7 अध्ययन के परिणाम

अध्ययन कार्य के परिणामों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है:

1.7.1 एकात्म मानववाद : दार्शनिक आधार और शिक्षा की अवधारणा

एकात्म मानववाद का मूल सिद्धांत यह है कि मानव केवल आर्थिक इकाई नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आयामों से युक्त एक संपूर्ण व्यक्तित्व है। उपाध्याय जी के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना है जो समाज के प्रति उत्तरदायी हो और राष्ट्रीय जीवन से जुड़ा हुआ हो। यह समग्र दृष्टि शिक्षा को केवल पाठ्यपुस्तक आधारित प्रक्रिया से आगे ले जाकर जीवन-केंद्रित बनाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मूल्य शिक्षा, जीवन-कौशल और नैतिक विकास पर बल दिया गया है। शिक्षा को बहुआयामी अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो एकात्म मानववाद के वैचारिक ढाँचे से निकटता स्थापित करता है। नीति में विद्यार्थियों को जिम्मेदार नागरिक बनाने की बात कही गई है, जो उपाध्याय जी के शिक्षा-दर्शन से सामंजस्य स्थापित करती है।

एकात्म मानववाद के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विश्लेषण यह दर्शाता है कि नीति ने समग्र शिक्षा, बहुविषयक दृष्टिकोण और मूल्य आधारित शिक्षण के माध्यम से उपाध्याय जी के शिक्षा-दर्शन के कई तत्वों को अपनाने का प्रयास किया है। फिर भी, नीति में वैश्विक प्रतिस्पर्धा, तकनीकीकरण और कौशल आधारित शिक्षा की प्रधानता यह संकेत देती है कि समग्र मानव विकास की अवधारणा को व्यवहारिक स्तर पर संतुलित करने की आवश्यकता है। उपाध्याय जी के अनुसार, शिक्षा का अंतिम उद्देश्य मानव के आंतरिक विकास और सांस्कृतिक आत्मबोध को मजबूत करना है। यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इन तत्वों को अधिक गहराई से लागू किया जाए, तो यह एकात्म मानववाद की शिक्षा-दृष्टि के और अधिक निकट आ सकती है।

1.7.2 भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) और सांस्कृतिक आयाम

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक तत्वों का शिक्षा में समावेश है। यह पहल भारतीय शिक्षा नीति के इतिहास में एक वैचारिक परिवर्तन का संकेत देती है, क्योंकि लंबे समय तक शिक्षा प्रणाली मुख्यतः औपनिवेशिक और पश्चिमी मॉडल से प्रभावित रही। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों में शिक्षा का आधार भारतीय संस्कृति, परंपरा और स्वदेशी ज्ञान पर होना चाहिए; यह दृष्टि 'एकात्म मानववाद' के मूल सिद्धांतों में निहित है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा का समावेश उनके शिक्षा-दर्शन के संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक आयाम के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के सबसे निकट दिखाई देती है। नीति ने भारतीय संस्कृति, परंपरा और स्वदेशी ज्ञान को शिक्षा के मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास किया है, जो एकात्म मानववाद की अवधारणा से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है। फिर भी यदि उपाध्याय जी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रभाव तभी सार्थक होगा जब उसे पाठ्यक्रम, शिक्षक-प्रशिक्षण और शिक्षण पद्धति में व्यवहारिक रूप से लागू किया जाए। यदि नीति में इस दिशा में ठोस संरचनात्मक कदम उठाए जाएँ, तो यह भारतीय शिक्षा-दर्शन के पुनर्जागरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है।

1.7.3 मातृभाषा आधारित शिक्षा और बहुभाषिकता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय जीवन की आत्मा मानते थे। उनके अनुसार, विदेशी भाषा पर अत्यधिक निर्भरता शिक्षा को समाज से दूर कर देती है और विद्यार्थियों में आत्मगौरव की भावना को कमजोर कर सकती है। उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा को सीखने की प्रक्रिया का सबसे प्रभावी माध्यम बताया, क्योंकि मातृभाषा व्यक्ति के अनुभव, भावनाओं और सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्पष्ट रूप से अनुशंसा की गई है कि कम से कम प्राथमिक स्तर तक शिक्षा मातृभाषा या स्थानीय भाषा में दी जानी चाहिए। नीति का यह प्रावधान कई शैक्षिक अनुसंधानों पर आधारित है, जिनमें यह पाया गया है कि बच्चे अपनी पहली भाषा में अधिक प्रभावी ढंग से सीखते हैं। नीति के अनुसार मातृभाषा आधारित शिक्षा अवधारणात्मक समझ को मजबूत करती है, रचनात्मकता और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देती है तथा शिक्षा में सहभागिता को बढ़ाती है। यह पहल उपाध्याय जी के उस विचार से मेल खाती है जिसमें उन्होंने शिक्षा को समाज और संस्कृति से जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुभाषिकता को केवल भाषाई विविधता के रूप में नहीं बल्कि संज्ञानात्मक विकास और राष्ट्रीय एकता के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नीति में त्रिभाषा सूत्र को लचीले रूप में लागू करने की बात कही गई है, जिससे विभिन्न भाषाई समूहों के बीच संवाद और सहयोग की भावना विकसित हो सके। इस दृष्टि से बहुभाषिकता का विचार उनके शिक्षा-दर्शन के साथ सामंजस्य स्थापित करता है।

इस प्रकार, मातृभाषा आधारित शिक्षा और बहुभाषिकता के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के सबसे निकट दिखाई देती है। नीति ने भारतीय भाषाओं को शिक्षा के केंद्र में लाने और सांस्कृतिक आत्मबोध को मजबूत करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। फिर भी यदि उपाध्याय जी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस नीति की सफलता उसके प्रभावी क्रियान्वयन पर निर्भर करेगी।

1.7.4 समान अवसर और सामाजिक समावेशिता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत प्रगति नहीं बल्कि सामाजिक संतुलन और समरसता का विकास भी है। उन्होंने शिक्षा को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने की आवश्यकता पर बल दिया। उनके विचार में शिक्षा सामाजिक न्याय का माध्यम है, जो व्यक्ति को आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता प्रदान करती है। उपाध्याय जी ने सामाजिक समरसता को केवल आर्थिक समानता तक सीमित नहीं माना, बल्कि इसे सांस्कृतिक और नैतिक एकता से जोड़ा। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संवाद, सहयोग और सहअस्तित्व की भावना विकसित करे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षा में असमानताओं को कम करने के लिए कई महत्वपूर्ण पहलें प्रस्तावित की हैं–

- जेंडर इनक्लुज़न फंड के माध्यम से बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना।
- सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों (SEDGs) के लिए विशेष योजनाएँ।
- दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए समावेशी शिक्षण वातावरण।
- दूरस्थ और ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सुविधाओं का विस्तार।

अतः, यह कहा जा सकता है कि समान अवसर और सामाजिक समावेशिता के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों के साथ उल्लेखनीय सामंजस्य स्थापित करती है। नीति ने शिक्षा को अधिक सुलभ, न्यायसंगत और समावेशी बनाने के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान किए हैं। फिर भी, उपाध्याय जी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो सामाजिक समरसता केवल प्रशासनिक योजनाओं से नहीं बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक शिक्षा के माध्यम से भी विकसित होती है। यदि नीति में समुदाय आधारित शिक्षण, मूल्य शिक्षा और स्थानीय सहभागिता को और अधिक सुदृढ़ किया जाए, तो यह समावेशी शिक्षा की अवधारणा को अधिक प्रभावी बना सकती है।

1.7.5 विकेंद्रीकरण और प्रशासनिक ढाँचा

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार शिक्षा केवल राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का हिस्सा नहीं है, बल्कि यह समाज और समुदाय के सहयोग से विकसित होने वाली प्रक्रिया है। उन्होंने शिक्षा में स्थानीय स्वायत्तता और जनसहभागिता को महत्वपूर्ण माना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षा प्रशासन को पुनर्गठित करने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव दिए हैं–

- **स्कूल कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर मॉडल** - संसाधनों का साझा उपयोग और सहयोगात्मक प्रबंधन।
- **नियामक संस्थाओं का पुनर्गठन** - उच्च शिक्षा के लिए एकल नियामक ढाँचा।
- **संस्थागत स्वायत्तता** - विश्वविद्यालयों और विद्यालयों को अधिक स्वतंत्रता।
- **पारदर्शी मूल्यांकन प्रणाली** - गुणवत्ता और जवाबदेही सुनिश्चित करना।

NEP 2020 में कुछ ऐसे प्रावधान भी हैं जो विकेंद्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम माने जा सकते हैं :

- स्थानीय समुदायों और स्कूल प्रबंधन समितियों की भूमिका को मजबूत करना;
- विद्यालय स्तर पर नवाचार और लचीलापन बढ़ाना; तथा
- क्षेत्रीय भाषाओं और स्थानीय ज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल करना।

ये पहलें उपाध्याय जी के उस विचार से मेल खाती हैं जिसमें उन्होंने शिक्षा को स्थानीय समाज के साथ जोड़ने पर बल दिया था।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि विकेंद्रीकरण और प्रशासनिक ढाँचे के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक मिश्रित मॉडल प्रस्तुत करती है, जिसमें संस्थागत स्वायत्तता और केंद्रीय नियमन दोनों को संतुलित करने का प्रयास किया गया है। यह दृष्टिकोण शिक्षा प्रणाली को अधिक संगठित और उत्तरदायी बनाता है, परंतु उपाध्याय जी के शिक्षा-दर्शन के आलोक में देखा जाए तो स्थानीय सहभागिता और सांस्कृतिक विविधता को और अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। यदि नीति में समुदाय आधारित निर्णय प्रक्रिया और क्षेत्रीय स्वायत्तता को सुदृढ़ किया जाए, तो यह एकात्म मानववाद की शिक्षा-दृष्टि के और अधिक निकट हो सकती है।

1.7.6 तकनीकीकरण और डिजिटल शिक्षा

उपाध्याय जी का मानना था कि आधुनिक तकनीक और विज्ञान समाज के विकास के लिए आवश्यक हैं, लेकिन उनका उपयोग मानव-केंद्रित होना चाहिए। उन्होंने शिक्षा में तकनीक को एक सहयोगी साधन के रूप में देखा, जो ज्ञान के प्रसार और संवाद को सशक्त बना सकता है। उनके विचारों में यह चेतावनी भी निहित थी कि यदि तकनीक को शिक्षा का केंद्र बना दिया जाए तो शिक्षा का मानवीय और सांस्कृतिक स्वरूप कमजोर पड़ सकता है। इस दृष्टि से डिजिटल शिक्षा का विकास तभी सार्थक है जब वह नैतिकता, संवेदनशीलता और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ संतुलित हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने तकनीकीकरण के कई पहलुओं को शिक्षा में शामिल करने का प्रस्ताव दिया है–

- **डिजिटल प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन शिक्षण** - जैसे दीक्षा(DIKSHA) और वर्चुअल लैब्स।
- **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा एनालिटिक्स** - व्यक्तिगत शिक्षण अनुभव विकसित करने के लिए।
- **ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज (OER)** - शिक्षण सामग्री की सुलभता बढ़ाने के लिए।
- **ब्लेंडेड लर्निंग मॉडल** - पारंपरिक और डिजिटल शिक्षण का संयोजन।

इस प्रकार, तकनीकीकरण और डिजिटल शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 आधुनिक शिक्षा प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुरूप एक महत्वपूर्ण कदम है। नीति ने शिक्षा को अधिक सुलभ, लचीला और नवाचारी बनाने के लिए तकनीकी साधनों का प्रभावी उपयोग करने की दिशा में प्रयास किया है। इसके पश्चात भी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' के आलोक में यह आवश्यक है कि तकनीक शिक्षा का साधन बनी रहे, न कि उसका मुख्य उद्देश्य। यदि डिजिटल शिक्षा को मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक चेतना और नैतिक शिक्षा के साथ संतुलित किया जाए, तो यह शिक्षा प्रणाली को अधिक समग्र और प्रभावी बना सकती है।

1.7.7 वैश्विक प्रतिस्पर्धा और बाज़ारोन्मुखता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों के संदर्भ में देखा जाए तो उन्होंने शिक्षा को समाज और राष्ट्र के समग्र विकास का साधन माना था। उनके 'एकात्म मानववाद' में आर्थिक प्रगति को स्वीकार किया गया है, परंतु उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बाज़ार की आवश्यकताओं को पूरा करना नहीं बल्कि नैतिकता, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक समरसता को मजबूत करना होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने और नवाचार आधारित अर्थव्यवस्था से जोड़ने पर विशेष बल दिया गया है। इसमें भारत को 'ज्ञान-आधारित वैश्विक शक्ति' बनाने का लक्ष्य रखा गया है। इस नीति में उच्च शिक्षा संस्थानों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने, विदेशी विश्वविद्यालयों के सहयोग को बढ़ावा देने और शोध एवं नवाचार को प्रोत्साहित करने की बात कही गई है। नीति में शोध, स्टार्टअप संस्कृति, उद्यमिता, कौशल विकास और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग जैसे तत्वों को शिक्षा के प्रमुख आयामों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह दृष्टिकोण वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा को अधिक प्रासंगिक और उपयोगी बनाने का प्रयास करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार–

- विद्यार्थियों को 21वीं सदी के कौशलों से लैस किया जाएगा।
- उद्यमिता और स्टार्टअप संस्कृति को शिक्षा का हिस्सा बनाया जाएगा।
- वैश्विक सहयोग और छात्र विनिमय कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाएगा।

फिर भी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' के आलोक में यह आवश्यक है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल आर्थिक सफलता न होकर समग्र मानव विकास और सांस्कृतिक आत्मबोध भी बना रहे। यदि नीति में वैश्विकता और स्वदेशी दृष्टि के बीच संतुलन बनाए रखा जाए, तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा-दर्शन के अधिक निकट और प्रभावी रूप में विकसित हो सकती है।

1.7.8 शिक्षक शिक्षा और नैतिक नेतृत्व

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों में शिक्षक को राष्ट्र-निर्माण का प्रमुख साधन माना गया है। उनके 'एकात्म मानववाद' में शिक्षक केवल ज्ञान देने वाला व्यक्ति नहीं बल्कि समाज और संस्कृति के मूल्यों का वाहक होता है। उपाध्याय जी के अनुसार, शिक्षा का वास्तविक स्वरूप शिक्षक के व्यक्तित्व और आचरण से निर्मित होता है। अतः, उन्होंने शिक्षक को केवल पेशेवर कर्मी नहीं बल्कि समाज का नैतिक मार्गदर्शक माना। उनके विचार में शिक्षक का कार्य विद्यार्थियों में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक आत्मबोध विकसित करना, नैतिक मूल्यों और चरित्र निर्माण को प्रोत्साहित करना तथा समाज और शिक्षा के बीच सेतु का कार्य करना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षक को शिक्षा प्रणाली का केंद्र बिंदु माना गया है। नीति में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि शिक्षा की गुणवत्ता का सीधा संबंध शिक्षक की तैयारी, पेशेवर दक्षता और नैतिक प्रतिबद्धता से है। इस दृष्टि से दोनों विचार अत्यधिक समीप प्रतीत होते हैं।

1.8 निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था के पुनर्गठन की दिशा में एक व्यापक और दूरदर्शी पहल के रूप में सामने आती है। यह नीति शिक्षा को समग्र, बहुआयामी और भविष्य उन्मुख बनाने का प्रयास करती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों के संदर्भ में इसका विश्लेषण यह दर्शाता है कि नीति में कई ऐसे तत्व शामिल किए गए हैं जो भारतीय शिक्षा-दर्शन, विशेषकर 'एकात्म मानववाद' के मूल सिद्धांतों से वैचारिक रूप से जुड़ते हैं। साथ ही, नीति में वैश्विक प्रतिस्पर्धा, तकनीकीकरण और बाज़ारोन्मुखता जैसे आधुनिक आयाम भी शामिल हैं, जो उपाध्याय जी की शिक्षा-दृष्टि के साथ एक संतुलित लेकिन जटिल संबंध स्थापित करते हैं। समग्र रूप से देखा जाए तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों के साथ एक 'आंशिक वैचारिक समन्वय' के रूप में समझा जा सकता है। नीति ने भारतीय शिक्षा प्रणाली को अधिक समग्र और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं, परंतु इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि शिक्षा के मानवीय, नैतिक और समाज-केंद्रित आयामों को निरंतर प्राथमिकता दी जाए।

यदि नीति के क्रियान्वयन में एकात्म मानववाद की मूल भावना मानव, समाज और संस्कृति के संतुलन को व्यवहारिक रूप से अपनाया जाए, तो यह भारतीय शिक्षा व्यवस्था के पुनर्निर्माण की दिशा में एक मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है।

1.9 अध्ययन का परिसीमन

प्रस्तावित अध्ययन के परिक्षेत्र को **'दीनदयाल समग्र'** तक ही परिसीमित किया गया है।

1.10 शोध की सीमाएँ

इस शोध अध्ययन की निम्नलिखित सीमाएँ हैं:

1. अध्ययन मुख्यतः दस्तावेज़ीय विश्लेषण पर आधारित है; तथा
2. अनुभवजन्य सर्वेक्षण या सांख्यिकीय डेटा शामिल नहीं है

संदर्भग्रंथ

उपाध्याय, दीनदयाल. (2016). *दीनदयाल उपाध्याय समग्र (खंड-1-15),* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.

ऐथल, पी. एस., एवं ऐथल, एस. (2020). *एनालिसिस ऑफ द इंडियन नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020 टुवर्ड्स अचीविंग इट्स ऑब्जेक्टिव्स.* इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट, टेक्नोलॉजी एंड सोशल साइंसेज़।

कुलकर्णी, श० अ० (2014). पंडित दीनदयाल विचार दर्शन *(खंड - 4),* एकात्म अर्थनीति, (अनुवाद - मोटेश्वर तपस्वी), नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन .

केलकर, भालचंद्र कृष्ण जी (1986). पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन *(खंड-3),* राजनीतिक चिंतक (अनुवाद - मोटेश्वर तपस्वी) . नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाश.

गुप्ता, एस० वी० (2015). *दीनदयाल जी और उनका चिंतन.* कानपुर: ऋतंभरा प्रकाशन, पृ० 71-73.

चोपड़ा, आर., एवं पांडेय, एस. (2023). *नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020: प्रॉमिसेस एंड प्रॉस्पेक्ट्स फॉर हायर एजुकेशन इन इंडिया.* शोधकोश जर्नल।

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020,* नई दिल्ली: भारत सरकार.

येनुगु, एस. (2022). *द न्यू नेशनल एजुकेशन पॉलिसी ऑफ इंडिया: विल इट बी सक्सेसफुल?* इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इन्क्लूसिव एजुकेशन।

रमानी, पी. (2025). *दीन दयाल उपाध्यायाज़ विज़न फ़ॉर एन इंडिजिनस एजुकेशन सिस्टम.* एनआईजे रिसर्च जर्नल।

शर्मा, ए. (2025). *रिलेवेंस ऑफ दीनदयाल उपाध्यायाज़ एजुकेशनल आइडियाज़ इन एनईपी 2020.* रिसर्चगेट पब्लिकेशन।

सिंह, फकीर (2018). पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के एकात्म मानव दर्शन , शिक्षा एवं शिक्षक, स्वरांजलि पब्लिकेशन, पृ० 132-136.

◀◀ ▶▶

अवधी लोकगीतों का सामाजिक जीवन में महत्व

अमृता सिंह

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं। वह किसी भी विषय पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् ही अपने विचार अभिव्यक्त करना चाहता है। वह अपने चारों ओर होने वाली सामाजिक तथा प्राकृतिक घटनाओं की जानकारी प्राप्त करता है। इन घटनाओं से मानव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित जरुर होता है अतः वह इसे समझने की कोशिश करता है।

लोक शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है जिसका लट्लकार में अन्य पुरुष एकवचन का रुप 'लोफते' है। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला। वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है लोक कहलाएगा। लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में लोक शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुषसुक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है-

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्षो घौः समवर्तत ।
पद्धयां भूमिर्दिश श्रोवान्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।

उपनिषदों में अनेक स्थानों में 'लोक' शब्द व्यवहत हुआ है। जैमनीय उपनिषद् ब्राह्मण में यथार्थ ही कहा गया है कि यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। भगवदगीता में भी लोक तथा लोक संग्रह आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है। लोक संग्रह का अर्थ साधारण जनता का आचरण, व्यवहार तथा आदर्श है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि "लोक शब्द का अर्थ 'जानपद' या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समुची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है उनकों उत्पन्न करते हैं।"

विश्व भारती शांतिनिकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष डॉ० कुंजबिहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा बतलाते हुए लोक शब्द की भी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है- "लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहारमक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुशभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रुप में आदिम व्यवस्था में निवास करते हैं।"

चार्ल्स ई0 गोवर ने सन् 1871 ई0 में 'फोक सांग्स आव् सदर्न इंडिया' नामक पुस्तक का संपादन किया। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भारतीय लोकगीतों का सर्वप्रथम संग्रह है। अतः यह अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक है। अवधी का अर्थ होता है- अवध प्रदेश के अन्तर्गत बोली जाने वाली बोली या विभाषा। अवध शब्द का अर्थ 'अयोध्या' है। भारतीय इतिहास और संस्कृति में अयोध्या, अयोध्या राज्य, राज्य वंश और उसके योगदान का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'अवध' शब्द का प्रयोग अयोध्या के लिए किया था।

अवधी के लोकगीतों में वियोग श्रृंगार की सुन्दर छटा अभिव्यक्त हुई है। प्रियतम के विदेश गमन के कारण नायिका विरह कातर है। प्राकृतिक दृश्य और ऋतु उसके विरह को और भी बढ़ा देते है। वह अपने विरह और तज्जन्य कष्टों का विवरण पशु-पक्षियों द्वारा प्रेषित करने का प्रयत्न करती है। अखिल विश्व उससे असहयोग करता हुआ दिखाई देता है और असहयोग ही नहीं वरन् वह दुःखदायी प्रतीत होता है। वह मन में कल्पना करती है कि यदि प्रियतम आ जाए तोः

"सावन घन गरजै।
कीधर की घटा ओनई, कीधर बरसै गंभीर।
हमरा ललन परदेसिया, भीजत होइहै कौने देस ।।
सावन घन गरजै।
खसकै बँगला छवउतिउँ, चौमुख रखतिउ दुहार।
हरिलैकै चढ़तिउँ अटरिया, झोंकवन अवति बयार।।
सावन घन गरजै।
श्रतलस लेहँगा परिरतिउँ, चुनरी बरनिन जाय।
झमकिकै चढ़तिउँ अटरिया, चौमुख दिबला बराय ।।
सावन घन गरजै।"[1]

वर्तमान समय में अवधी की लोकप्रियता के साथ उसका वैभव एवं साहित्य विभिन्न दिशाओं में प्रस्फुटित होता जा रहा है। आज का लोक साहित्य या लोक काव्य समाज, देश और काल की विभिन्न समस्याओं को लेकर जनता के सम्मुख उपस्थित हो रहा है।

अवधी के लोकगीतों का इतिहास बड़ा पुराना है। आज हमारे पास अवधी के लोग गीतों का बड़ा भारी भण्डार हैं, परन्तु दुर्भाग्य यह है न तो उनके लेखकों का हमें ज्ञान है, न उनके रचना-काल का कोई पता लगता है। लोकगीतों का यह भण्डार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के पास क्रमशः चला आ रहा है। 2 लोकगीतों की रचना प्रमुख रुप से निम्न शीर्षकों के अंतर्गत हुई है-

1. नछहू
2. चक्की के गीत
3. राह के गीत
4. होली
5. विवाह के गीत
6. चैती
7. धोबी के गीत
8. वसंत ऋतु के गीत
9. वर्षा ऋतु के गीत
10. कोल्हू के गीत
11. अन्न प्राशन के गीत
12. जनेऊ के गीत
13. कन्यादान के गीत
14. कहरवा
15. सोहर

वर्तमान अवधी के लोकगीत लेखकों में श्री वंशीधर शुक्ल, श्री रमई काका, श्री राधा वल्लभ, श्री मती सुमित्रा कुमारी सिन्हा, श्री बलदेव प्रसाद, श्री राम जी दास आदि विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

प्रेममार्ग में संयोग और वियोग के लिए समान स्थान है। अवधी के महान कवि जायसी ने भी अपनी रचनाओं में प्रेम और विरह का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।

"साजन लेइ पठावा आयसु जाइ न मेट।
तन मन जोबन साजि कै देह चली लेइ भेंट।।"[3]

जायसी ने 'पद्मावत' में बारहमासा का बहुत ही सुव्यस्थित वर्णन किया हैं। 'बारहमासा' में अवध जनपद की संस्कृति विभिन्न महीनों की विशेषताओं, हर महीने के उत्सव-त्योहारों के बीच मूर्तिमान और विरह-वेदना प्रगाढ़ हो उठती है। इसके ऊपर अवधी की ठेठ मिठास-

"बरसै मघा डाँकोरि झँकोरि।
मोर दोउ नैन चुवइ जनु-ओरी।।"[4]

अवधी के लोकगीतों के अंतर्गत अनेक रचनाकारों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के सामने अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं। उन्हीं रचनाकारों में से एक कविवर 'उन्मन्त जी' की एक रचना निम्न है-

"डकुआ लुटेरुवा के राज तनी देखा।
झपटै कबुतरी प बाज तनी देखा।
X X X
नकली समाजवाद, खोखली आजादी,
पपवा प परदा महतिमा क खादी।
X X X
देहिया उघारि के करावें नाच नंगा,
हड़वा बहाड़ के मचावैं हुड़दंगा।।"[5]

इसके अलावा जगदीश पियूष ने ग्रामीण हृदय की व्यथा की मार्मिकता को व्यंजित किया है-

"बड़ा बड़ा नाव बा।
सड़कै लाग गांव बा।।
रस्ता कोर्ट ठांव पै बिलार माई जी।
होटे केत्ती देर बाद भिनसार माई जी।।"[6]

लोकगीत, लोक साहित्य का सबसे प्रधान रुप हैं। इनमें लोकजीवन प्रतिविम्बित होता है. लोकगीत प्रायः संक्षिप्त और भाव प्रधान होते है- ऋतुगीत के अंतर्गत निम्न गीतों का जिक्र होता है-

(क). कजली-

सावन के महीने में अवध क्षेत्र में कजली गाने की प्रथा है। इन गीतों में प्रधानतः प्रेम का वर्णन होता है-

"वन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान
काहु खायँ शिवशंकर बाबा

काहु खायँ भगवान,
वन में बाज रही बाँसुरिया।"[7]

(ख). सावन-

यह भी कजली की भाँति झूला झूलते समय गाया जाता है-

"बरिन बरिन जल चुए खोरिन काँदव कीच।
कवने निरमोहिया कय घेरिया ससुरे म सावन होय,
लोगों रे महिना सावन का।"[8]

(ग). होली-

होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीत फाग फगुआ और चैताल के नाम से प्रसिद्ध हैं।

"प्रभु ने ऐसी रेल बनाई।
तन की गाड़ी मन कर व्यंजन क्रोध की आग जलाई।
पानी रुधिर अपार भरो है मन का वेग लै जाई,
साँस की सीटी बजाई।"[9]

हमारे जीवन में संस्कारों का बहुत महत्व है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारा संपूर्ण जीवन संस्कारमय है। अवध क्षेत्र में सोहर के माध्यम से बड़ा ही विस्तृत व रोचक वर्णन किया जाता है-

"जो मैं जानती हूं कि लवंगारी यतना सुगंधित।
लवंगारी रंगतिऊं छयलवा के पग सहराव मां गमकत। "[10]

इसके अलावा विवाह गीत, बधाई, छठी, रोचना, सरिया, पसनी, मुंडन, कर्णवेध, इत्यादि संस्कारों को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। अवधी कवियों ने समय-समय पर धार्मिक गीतों का भी जिक्र किया है। जैसे शीतला माता के गीत निम्न हैं-

"निमिया के डरिया माता डारी हो हिंडोलवा,
कि झूली झली ना।
माता गावै लागीं गीतिया कि झूली झूली ना।"[11]

इसी प्रकार निर्गुण गीत भी लोक गीत के तहत गाए जाते हैं। इसमें ईश्वर पर विश्वास और संसार की निस्सारता का वर्णन है।

इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि अवधी का स्थान जनपदीय बोलियों में विशेष महत्वपूर्ण है। अवधी लोकगीतों का सामाजिक जीवन में बहुत महत्व है। गीतों के माध्यम से ही कवि अपनी बात को कम शब्दो में पाठकों तक पहुँचा देता है। लोकगीत से ही विवाह, संस्कार, बारममासा, वर्षा इत्यादि की पहचान या यूँ कहें तो अस्तित्व बना हुआ है। जिस प्रकार बिना आत्मा के शरीर का महत्व नहीं रह जाता उसी प्रकार बिना गीतों के लोक जीवन भी अधूरा-सा प्रतीत होता है। नये कवियों को इस लोकगीत की परंपरा को आगे बढ़ाने का सतत प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ

1. अवधी और उसका साहित्य- डॉ0 त्रिलोकी नाथ दीक्षित, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-110002, पृ0-131
2. वहीं से, पृ0-133
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, जी0-17 जगतपुरी, दिल्ली- 110051, ग्यारहवां संस्करणः 2020, पृ0-110
4. वही से, पृ0-111
5. अवधी ग्रंधावली (भाग-4)- संपा0 जगदीश पीयूष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, पृ-20
6. वहीं से, पृ0-23
7. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास- राहुल सांकृत्यायन, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं0 2017वि0, पृ0-198
8. वही से, पृ0-199
9. वही से, पृ0-200
10. वही से, पृ0-210
11. वही से, पृ0-223

◂◂ ▸▸

ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति : एक अध्ययन

डॉ. संध्या कुमारी*

शोध सार –

ग्रामीण समाज में महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन की धुरी हैं। वे कृषि कार्यों, पशुपालन, घरेलू जिम्मेदारियों और पारिवारिक देखभाल में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इसके बावजूद, उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और राजनीतिक निर्णय-निर्माण में समान अवसर नहीं मिलते। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो प्राचीन भारत में महिलाएँ सम्मानित स्थान रखती थीं, परंतु मध्यकालीन पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उनकी स्वतंत्रता को सीमित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम में ग्रामीण महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी की, किंतु स्वतंत्रता के बाद भी व्यवहारिक स्तर पर असमानता बनी रही। शिक्षा के क्षेत्र में ग्रामीण महिलाओं की स्थिति शहरी महिलाओं की तुलना में कमजोर है। बाल विवाह, घरेलू जिम्मेदारियाँ और संसाधनों की कमी शिक्षा में बाधा डालती हैं। स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सीमित है, विशेषकर मातृ स्वास्थ्य और पोषण के मामले में। सामाजिक मान्यताओं और लैंगिक असमानता के कारण महिलाएँ निर्णय-निर्माण से दूर रहती हैं। सरकारी योजनाएँ जैसे *बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, महिला स्वयं सहायता समूह, जननी सुरक्षा योजना* और *पंचायती राज में आरक्षण* ने महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयास किया है। इन योजनाओं से शिक्षा, स्वास्थ्य और राजनीतिक भागीदारी में सुधार हुआ है, लेकिन चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं।

शोध सारांश आज के इस आधुनिक युग में नारी पुरुष से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या सामाजिक या व्यवसायिक या वैज्ञानिक या कला का क्षेत्र, नारी हर क्षेत्र में अपना एक अलग स्थान बना चुकी है। हमारे देश की ऐसी कई महान नारियां है जिन्होंने आसमान की बुलंदियों को छुआ है और देश का नाम रोशन किया है। उदाहरण के लिए स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी (प्रधानमंत्री), किरण बेदी (आई.पी.एस. अधिकारी), सुनिता विलियम्स, कल्पना चावला जो अंतरिक्ष की ऊँचाईयों तक पहुँच चुकी है। स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर (गायिका), हेमा मालिनी, राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटील, सुधा चंद्रन, माधुरी दीक्षित, ऐश्वर्याराय बच्चन जिन्होंने कला के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर इतिहास में अपना नाम स्वर्णीम अक्षरों में अंकित कर लिया है। पी.टी. उषा, सानिया मिर्जा ने खेल जगत में अपना नाम दर्ज किया है। इतिहास भी इस साक्ष्य का गवाह है कि प्रचीन काल में भी हमारे देश में कई ऐसी वीरांगना पैदा हुई है जिन्होंने देश की शान, गौरव, गरिमा को बनाये रखी है उनमें से महारानी लक्ष्मीबाई, कंठ कोकिला श्रीमती रोजनी नायडू, अहिल्याबाई और ऐसी कई महान विभूतियाँ पैदा हुई है

अति प्राचीन काल में साधारणतया नारियों का क्षेत्र सिर्फ घर की चार दीवारी तक ही सीमित था, परन्तु आज के इस आधुनिक युग में नारी जहां पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग प्रदान कर रही है और वास्तव में देखा जाए तो कई क्षेत्रों में नारी पुरुषों से भी आगे है।

इसके बावजूद भी इस आधुनिक युग में हमारा समाज एक पुरुष प्रदान समाज है आज के युग में नारी चाहे कितने ही बड़े मुकाम पर पहुंच जाय वह नारी ही है। हमारा समाज कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाए लोगों की मानसिकता आज भी वही रूढ़िवादियों में जकड़ी हुई है। आज भी यह देखा जा रहा है कि लड़कियों, औरतों के साथ बहुत अत्याचार हो रहे है आज भी आये दिनों अखबार व टी.वी. में यह देखने, पडने, सुनने को मिलता है कि ससुराल वालों ने दहेज की मांग पूरी न होने पर बहू को जिन्दा जला दिया, कई घरों में यह देखा

* समाजशास्त्र विभाग मगध विश्वविद्यालय बोधगया

जा रहा है कि औरते घर का काम सम्भालती है, आफिस भी जाती है बच्चे, घर के बुजुर्ग, पति का भी ध्यान रकती है इसके बाजूद भी उसका अस्तित्व घर में न के बराबर होता है। शिक्षित परिवारों में भी भ्रूण हत्या ऐसी स्थिति में और ऐसे आधुनिक युग में आवश्यकता है हमें अपनी मानसिकता को बदलने की। हमारे भारतीय संविधान में भी औरत और आदमी को समान अधिकार दिये गए है इसके बावजूद आज भी स्थिति में बहुत सुधार नही हुआ है अत: मेरा समाज से, इस देश से यह अनुरोध है कि बदलते परिवेश में नारियों की स्वतंत्र मानसिकता को स्वीकार किया जाए क्योंकि आज की नारी अबला नहीं सबला है परन्तु हमारी मानसिकता कब स्वतंत्र होगी क्योंकि देश की अखंडता, एकता व देश के सर्वांगीण विकास में नारी जाति का बहूत बड़ा योगदान है और यह योगदान कायम रहे इसके लिए देश, समाज को अपनी मानसिकता बदलनी होगी क्योकि नारी पूज्यनीय है, सम्माननीय है

1. ग्रामीण समाज में महिलाओं की भूमिका

ग्रामीण महिलाएँ कृषि कार्यों में पुरुषों के बराबर श्रम करती हैं। वे खेतों में बुआई, कटाई, पशुपालन और घरेलू कार्यों में संलग्न रहती हैं। इसके अलावा, वे सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक गतिविधियों की संरक्षक भी होती हैं।

2. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन काल में महिलाएँ धार्मिक और सामाजिक जीवन में सम्मानित स्थान रखती थीं। मध्यकाल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उनकी स्वतंत्रता को सीमित किया। स्वतंत्रता संग्राम में ग्रामीण महिलाओं ने खादी बुनने, आंदोलन में भाग लेने और सामाजिक जागरूकता फैलाने में योगदान दिया। स्वतंत्रता के बाद संविधान ने समान अधिकार दिए, लेकिन व्यवहारिक स्तर पर असमानता बनी रही।

3. शिक्षा और स्वास्थ्य की स्थिति

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता दर शहरी क्षेत्रों से कम है। बाल विवाह और घरेलू जिम्मेदारियाँ शिक्षा में बाधा डालती हैं। स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सीमित है, विशेषकर मातृ स्वास्थ्य और पोषण के मामले में। सरकारी योजनाओं के बावजूद जागरूकता और संसाधनों की कमी से महिलाएँ पिछड़ जाती हैं।

4. सामाजिक मान्यताएँ और लैंगिक असमानता

पितृसत्तात्मक सोच महिलाओं को निर्णय-निर्माण से दूर रखती है। विवाह और परिवार में पुरुष प्रधानता अधिक है। महिलाओं के श्रम को अक्सर "सहायता" माना जाता है, न कि "काम"। सामाजिक मान्यताओं के कारण महिलाएँ शिक्षा, रोजगार और राजनीति में पीछे रह जाती हैं।

5. सरकारी योजनाएँ और नीतियाँ

- **बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ** अभियान ने शिक्षा पर जोर दिया।
- **महिला स्वयं सहायता समूह (SHGs)** ने आर्थिक सशक्तिकरण में योगदान दिया।
- **पंचायती राज व्यवस्था** में महिलाओं को आरक्षण मिला, जिससे राजनीतिक भागीदारी बढ़ी।
- **जननी सुरक्षा योजना** और **आयुष्मान भारत** जैसी योजनाएँ स्वास्थ्य सुधार के लिए हैं।
- योजनाओं का प्रभाव तभी होता है जब स्थानीय स्तर पर सही क्रियान्वयन हो।

6. चुनौतियाँ और संभावनाएँ

- शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार की आवश्यकता।
- सामाजिक मान्यताओं में बदलाव।
- आर्थिक अवसरों का विस्तार।
- राजनीतिक भागीदारी को और मजबूत करना।

निष्कर्ष

ग्रामीण समाज में महिलाएँ सामाजिक और आर्थिक जीवन की धुरी हैं। वे कृषि, पशुपालन, घरेलू कार्य और सामाजिक परंपराओं में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इसके बावजूद, उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और राजनीतिक निर्णय-निर्माण में समान अवसर नहीं मिलते। सरकारी योजनाओं और नीतियों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयास किया है, लेकिन चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। यदि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों को समान रूप से उपलब्ध कराया जाए तो ग्रामीण महिलाएँ समाज के विकास में और अधिक प्रभावी योगदान दे सकती हैं। इस अध्ययन का निष्कर्ष है कि ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों को समान रूप से उपलब्ध कराना आवश्यक है। साथ ही, सामाजिक मान्यताओं और लैंगिक असमानता को दूर करना भी जरूरी है।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, के. एल. *भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र.*
2. सिंह, सुरेन्द्र. *ग्रामीण समाज और महिलाएँ.*
3. पटेल, तुलसी. *भारतीय परिवार और महिलाएँ.*
4. भारत सरकार. *महिला सशक्तिकरण नीति रिपोर्ट.*
5. census of India (जनगणना रिपोर्ट).
6. Desai, Neera. *Women in Modern India*.
6. Agarwal, Bina. *A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia*.
7. Dreze, Jean & Sen, Amartya. *India: Development and Participation*.
8. Rao, Nitya. *Gender Equality and Rural Development*.
9. World Bank. *Gender and Development in Rural Areas*.

स्वस्थ भारत अभियान में महिलाओं की भूमिका

डॉ. संगीता कुमारी*

शोध सार -

स्वास्थ्य भारत अभियान भारत सरकार की एक व्यापक पहल है जिसका उद्देश्य देश के नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ, जागरूकता और स्वच्छ जीवनशैली उपलब्ध कराना है। यह अभियान राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, स्वच्छ भारत मिशन और राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 से जुड़ा हुआ है और इसका लक्ष्य 'सबके लिए स्वास्थ्य' सुनिश्चित करना है। स्वस्थ भारत अभियान से देश की जनता बहुत ही सकारात्मक रूप में पहल कर रही है भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण पहल है जिसका उद्देश्य नागरिकों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना, रोगों की रोकथाम करना और स्वच्छता को जीवनशैली का हिस्सा बनाना है। इस अभियान में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे परिवार और समाज की आधारशिला हैं। महिलाएँ न केवल अपने स्वास्थ्य की देखभाल करती हैं बल्कि बच्चों, बुजुर्गों और परिवार के अन्य सदस्यों के स्वास्थ्य पर भी सीधा प्रभाव डालती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ स्वच्छता, पोषण और मातृ-शिशु स्वास्थ्य की दिशा में जागरूकता फैलाने में अग्रणी रही हैं। महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं, आशा बहुओं और स्वास्थ्य स्वयंसेविकाओं के माध्यम से अभियान को जमीनी स्तर पर सफल बना रही हैं। वे टीकाकरण, पोषण, प्रसव पूर्व और प्रसव पश्चात देखभाल, स्वच्छ जल उपयोग और स्वच्छता के प्रति समाज को प्रेरित करती हैं। इस प्रकार महिलाओं की सक्रिय भागीदारी स्वस्थ भारत अभियान को जन-जन तक पहुँचाने में निर्णायक है।

प्रमुख शब्द - स्वस्थ भारत अभियान**,** महिला सशक्तिकरण, स्वास्थ्य जागरूकता, पोषण, मातृ-शिशु स्वास्थ्य, स्वच्छता, सामुदायिक भागीदारी आदि

उद्देश्य:- स्वस्थ भारत अभियान में महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण करना।

उपकल्पना - महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से परिवार और समाज में स्वास्थ्य संबंधी सकारात्मक परिवर्तन तेजी से होंगे।

सारांश - देश में सार्वभौमिक स्वच्छता पर ध्यान केंद्रित करने के प्रयासों में तेजी लाने के उद्देश्य से सरकार द्वारा 2 अक्तूबर, 2014 को स्वच्छ भारत अभियान की शुरुआत की गई थी| गौरतलब है कि इस मिशन को दो अलग-अलग मंत्रालयों- ग्रामीण क्षेत्रों के लिये पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय और शहरी क्षेत्रों के लिये आवास एवं शहरी मामलों के मंत्रालय द्वारा निष्पादित किया जा रहा है| अभियान को दो भागों में बाँटकर देखने का मुख्य कारण यही है कि दोनों क्षेत्रों (ग्रामीण और शहरी) की अपनी स्वच्छता संबंधी अलग-अलग आवश्यकताएँ हैं, जिन्हें अलग-अलग दृष्टिकोणों की आवश्यकता है|

खुले में शौच की समस्या, जिसका उन्मूलन स्वच्छ भारत अभियान का प्राथमिक उद्देश्य है, सिर्फ ग्रामीण भारत तक ही सीमित नहीं है| जहाँ एक ओर संपूर्ण स्वच्छता का कार्यान्वयन ग्रामीण भारत में एक बड़ी चुनौती है, वहीं शहरी स्वच्छता के मोर्चे पर कुछ अलग गंभीर चुनौतियाँ मौजूद हैं, जिनसे अलग दृष्टिकोण से निपटने की आवश्यकता है| स्वास्थ्य भारत अभियान से लोगो में जागरूकता बढ़ी जिसका फल **खुले में शौच से मुक्ति (ODF) यह अभियान** भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण पहल है इससे लोगो में आशा की किरण जगी है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वच्छता को बढ़ावा देना और लोगों को शौचालय उपयोग के लिए प्रेरित करना है। खुले में शौच की आदत न केवल पर्यावरण को प्रदूषित करती है बल्कि स्वास्थ्य के

* सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, माँ वागेश्वरी महाविद्यालय, गया जी

लिए भी गंभीर खतरा पैदा करती है। इसके कारण जलजनित रोग, दस्त, डेंगू, मलेरिया और अन्य संक्रामक बीमारियाँ फैलती हैं। इसी समस्या को दूर करने के लिए स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत ODF अभियान चलाया गया।

सवा अभियान का मुख्य लक्ष्य था कि हर घर में शौचालय का निर्माण हो और लोग उसका नियमित उपयोग करें। सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय निर्माण के लिए आर्थिक सहायता दी और जन-जागरूकता कार्यक्रम चलाए। स्कूलों, पंचायतों और सामाजिक संगठनों को भी इसमें शामिल किया गया ताकि सामूहिक प्रयास से खुले में शौच की आदत को समाप्त किया जा सके।

ODF अभियान ने न केवल स्वास्थ्य सुधार में योगदान दिया बल्कि महिलाओं की सुरक्षा और गरिमा को भी सुनिश्चित किया। पहले ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को खुले में शौच के लिए जाना पड़ता था, जिससे उन्हें असुरक्षा और असुविधा का सामना करना पड़ता था। शौचालय निर्माण से उनकी निजता और सम्मान की रक्षा हुई।

आज कई राज्यों और जिलों ने ODF का दर्जा प्राप्त कर लिया है। हालांकि, चुनौती यह है कि केवल शौचालय निर्माण ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके नियमित उपयोग और रखरखाव पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। यदि लोग स्वच्छता को अपनी आदत बना लें, तभी ODF अभियान का वास्तविक उद्देश्य पूरा होगा।

स्वास्थ्य खर्च को कम करना और सरकारी सुविधाओं को बढ़ाना भारत की स्वास्थ्य नीति का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में स्वास्थ्य सेवाओं का खर्च आम नागरिकों के लिए एक बड़ी चुनौती है। निजी अस्पतालों और क्लीनिकों में इलाज की लागत बहुत अधिक होती है, जिससे गरीब और मध्यम वर्ग के लोग आर्थिक दबाव में आ जाते हैं। इसी समस्या को हल करने के लिए सरकार ने स्वास्थ्य खर्च को कम करने और सरकारी सुविधाओं को बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया है।

सरकार ने **आयुष्मान भारत योजना** जैसी पहल शुरू की है, जिसके अंतर्गत गरीब और कमजोर वर्ग के लोगों को मुफ्त या कम लागत पर इलाज की सुविधा दी जाती है। इस योजना से लाखों परिवारों को गंभीर बीमारियों के इलाज में आर्थिक राहत मिली है। इसके अलावा, **जन औषधि केंद्रों** की स्थापना की गई है, जहाँ सस्ती दरों पर जेनेरिक दवाइयाँ उपलब्ध कराई जाती हैं। इससे दवाइयों पर होने वाला खर्च काफी कम हुआ है।

सरकारी अस्पतालों और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को मज़बूत करने पर भी ज़ोर दिया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं को सुलभ बनाने के लिए नए अस्पतालों का निर्माण और पुराने अस्पतालों का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। साथ ही, डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं और टेलीमेडिसिन को बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि दूरदराज़ के लोग भी विशेषज्ञ डॉक्टरों से परामर्श ले सकें। स्वास्थ्य खर्च को कम करना और सरकारी सुविधाओं को बढ़ाना केवल आर्थिक राहत देने का उपाय नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में भी एक बड़ा कदम है। जब हर नागरिक को सस्ती और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधा मिलेगी, तभी भारत एक स्वस्थ और सशक्त राष्ट्र बन सकेगा।

यह अभियान राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, स्वच्छ भारत मिशन और राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 से जुड़ा हुआ है और इसका लक्ष्य 'सबके लिए स्वास्थ्य' सुनिश्चित करना है।अन्य सदस्यों के स्वास्थ्य पर भी सीधा प्रभाव डालती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ स्वच्छता, पोषण और मातृ-शिशु स्वास्थ्य की दिशा में जागरूकता फैलाने में अग्रणी रही हैं। महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं, आशा बहुओं और स्वास्थ्य स्वयंसेविकाओं के माध्यम से अभियान को जमीनी स्तर पर सफल बना रही हैं। वे टीकाकरण, पोषण, प्रसव पूर्व और प्रसव पश्चात देखभाल, स्वच्छ जल उपयोग और स्वच्छता के प्रति समाज को प्रेरित करती हैं। इस प्रकार महिलाओं की सक्रिय भागीदारी स्वस्थ भारत अभियान को जन-जन तक पहुँचाने में निर्णायक है। महिलाओं की भूमिका केवल स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित नहीं है बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन की वाहक भी हैं। जब महिलाएँ

स्वास्थ्य और स्वच्छता को अपनाती हैं तो पूरा परिवार और समाज प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, यदि एक महिला पोषणयुक्त भोजन पर ध्यान देती है तो बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास बेहतर होता है। इसी प्रकार यदि महिलाएँ स्वच्छता पर ध्यान देती हैं तो संक्रामक रोगों की संभावना कम हो जाती है। स्वस्थ भारत अभियान में महिलाओं की भागीदारी से मातृ मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर में कमी आई है। इसके अलावा महिलाओं ने परिवार नियोजन, टीकाकरण और पोषण कार्यक्रमों में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। महिलाओं की भागीदारी से ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ी है। वे स्वास्थ्य शिक्षा, जागरूकता और व्यवहार परिवर्तन में अग्रणी रही हैं। इस प्रकार महिलाओं की भूमिका स्वस्थ भारत अभियान को सफल बनाने में निर्णायक है।

निष्कर्ष - स्वस्थ भारत अभियान में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वे परिवार और समाज की स्वास्थ्य संरचना को मजबूत करती हैं। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से स्वास्थ्य जागरूकता, पोषण, मातृ-शिशु स्वास्थ्य और स्वच्छता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। यदि महिलाओं को पर्याप्त संसाधन, प्रशिक्षण और अवसर दिए जाएँ तो वे स्वस्थ भारत अभियान को और अधिक प्रभावी बना सकती हैं। महिलाओं की भागीदारी से न केवल परिवार बल्कि पूरे समाज में स्वास्थ्य संबंधी सकारात्मक परिवर्तन होते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वस्थ भारत अभियान की सफलता महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर है।

संदर्भ सूची

1. मिश्रा, आर. (2019). *स्वस्थ भारत अभियान और महिला सशक्तिकरण.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय प्रकाशन।
2. शर्मा, एस. (2020). *महिलाओं की भूमिका स्वास्थ्य जागरूकता में.* लखनऊ: भारतीय अध्ययन केंद्र।
3. गुप्ता, पी. (2018). *स्वच्छता और स्वास्थ्य में महिलाओं का योगदान.* वाराणसी: गंगा प्रकाशन।
4. वर्मा, ए. (2021). *मातृ-शिशु स्वास्थ्य और महिलाएँ.* पटना: बिहार विश्वविद्यालय प्रकाशन।
5. सिंह, डी. (2017). *स्वस्थ भारत अभियान का सामाजिक प्रभाव.* भोपाल: मध्यप्रदेश प्रकाशन।
6. चौधरी, के. (2022). *महिला सशक्तिकरण और स्वास्थ्य.* जयपुर: राजस्थान प्रकाशन।
7. पांडे, आर. (2016). *स्वच्छ भारत से स्वस्थ भारत तक.* दिल्ली: भारतीय पुस्तकालय।
8. Kumar, A. (2019). *Women and Health Awareness in India*. Journal of Social Health Studies, 12(3), 45-60.
9. Patel, S. (2020). *Role of Women in Public Health Campaigns*. International Journal of Health Promotion, 8(2), 78-95.
10. Mehta, R. (2018). *Maternal and Child Health in Rural India*. Global Health Review, 15(4), 112-130.
11. Sharma, V. (2021). *Community Participation in Health Programs*. Asian Journal of Public Health, 9(1), 34-50.
12. Singh, P. (2017). *Women Empowerment and Health Initiatives*. International Journal of Social Sciences, 11(2), 89-105.

भारत छोड़ो आन्दोलन में मगध प्रमण्डल के महिलाओं की सहभागिता

डॉ. रानी कुमारी*

शोध–सार :

प्रस्तुत शोध लेख " भारत छोड़ो आन्दोलन में मगध प्रमण्डल के महिलाओं की सहभागिता" का अध्ययन है। भारत का स्वतंत्रता संग्राम केवल पुरुषों तक सीमित आंदोलन नहीं था, बल्कि इसमें महिलाओं की सहभागिता भी अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणादायी रही। 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का एक महत्वपूर्ण और निर्णायक चरण था, जिसमें देश के विभिन्न भागों की महिलाओं ने उत्साहपूर्वक और सक्रिय रूप से भाग लिया। बिहार के मगध प्रमण्डलकृजैसे गया, औरंगाबाद, जहानाबाद तथा नवादा आदि क्षेत्रों की महिलाओं ने भी इस आंदोलन में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। उन्होंने जनसभाओं में भाग लेकर, जुलूसों का आयोजन कर, संदेशों का आदान–प्रदान करते हुए तथा क्रांतिकारियों को सहयोग प्रदान करते हुए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक जनजागरण किया। प्रस्तुत शोध–लेख का उद्देश्य भारत छोड़ो आन्दोलन के संदर्भ में मगध क्षेत्र की महिलाओं की भूमिका का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है।

कुंजिका : भारत छोड़ो आन्दोलन, मगध प्रमण्डल, स्वतंत्रता संग्राम, महिला सहभागिता, बिहार इत्यादि।

प्रस्तावना : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल राजनीतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण का भी आंदोलन था। इस आंदोलन ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को एक मंच पर लाकर राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता की भावना को सुदृढ़ किया। महिलाओं की भागीदारी ने इस आंदोलन को नई ऊर्जा और व्यापकता प्रदान की।

प्रारंभिक दौर में महिलाओं की भूमिका अपेक्षाकृत सीमित थी, किंतु धीरे–धीरे उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारंभ किया। असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन और नमक सत्याग्रह जैसे आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी ने उन्हें सामाजिक और राजनीतिक चेतना प्रदान की। इसी प्रक्रिया का चरम रूप 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में देखने को मिला।

मगध प्रमण्डल, जो प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है, स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भी सक्रिय रहा। इस क्षेत्र में अनेक राष्ट्रीय नेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों ने आंदोलन का नेतृत्व किया। उनके साथ–साथ महिलाओं ने भी आंदोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

उस समय समाज में महिलाओं की भूमिका मुख्यतः घरेलू कार्यों तक सीमित मानी जाती थी। शिक्षा का प्रसार भी सीमित था और सामाजिक रूढ़ियाँ महिलाओं की सार्वजनिक गतिविधियों में भागीदारी को बाधित करती थीं। इसके बावजूद मगध क्षेत्र की महिलाओं ने साहस और दृढ़ता का परिचय देते हुए आंदोलन में सक्रिय भाग लिया।[1] उन्होंने जुलूसों में भाग लिया, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध नारे लगाए, गिरफ्तारियाँ दीं और राष्ट्रीय आंदोलन को जन–आंदोलन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत छोड़ो आन्दोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

द्वितीय विश्व युद्ध (1939) के दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं की सहमति के बिना भारत को युद्ध में शामिल कर लिया। इससे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अन्य राजनीतिक संगठनों में असंतोष उत्पन्न हुआ। युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता की स्वतंत्रता की मांगों को नजरअंदाज किया, जिससे स्वतंत्रता आंदोलन और अधिक तीव्र हो गया।

1942 में क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद भारतीय नेताओं में निराशा और असंतोष बढ़ गया। इसके परिणामस्वरूप 8 अगस्त 1942 को बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में भारत छोड़ो

---

* पी–एच0 डी0, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 99312 66509, E-mail id : rkgaya160@gmail.com

आन्दोलन का प्रस्ताव पारित किया गया। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने "करो या मरो" का ऐतिहासिक नारा दिया और जनता से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक आंदोलन करने का आह्वान किया।

आंदोलन के प्रारंभ होते ही ब्रिटिश सरकार ने कठोर दमनात्मक नीति अपनाई और प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। किंतु इसके बावजूद आंदोलन पूरे देश में फैल गया और ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँच गया। बिहार उन प्रांतों में से एक था जहाँ यह आंदोलन अत्यंत उग्र और व्यापक रूप में सामने आया।

बिहार में भारत छोड़ो आन्दोलन

बिहार स्वतंत्रता आंदोलन का एक प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ के छात्रों, किसानों और युवाओं ने आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। पटना, गया, भागलपुर और शाहाबाद जैसे क्षेत्रों में आंदोलन का व्यापक प्रभाव देखा गया।

बिहार में आंदोलन के दौरान रेलवे स्टेशन, डाकघर और सरकारी कार्यालयों पर हमले हुए तथा संचार व्यवस्था को बाधित किया गया। कई स्थानों पर समानांतर प्रशासन की स्थापना का प्रयास भी किया गया। इन गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही।

महिलाओं ने आंदोलन के दौरान सभाओं का आयोजन किया, जुलूस निकाले और राष्ट्रीय संदेशों को गाँव–गाँव तक पहुँचाया। उन्होंने पुरुष नेताओं की गिरफ्तारी के बाद आंदोलन की जिम्मेदारी संभाली और जनता को संगठित करने का कार्य किया।

मगध प्रमण्डल में भारत छोड़ो आन्दोलन

मगध प्रमण्डल बिहार का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक क्षेत्र है, जिसमें गया, नवादा, औरंगाबाद तथा जहानाबाद जैसे जिले शामिल हैं। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भी इस क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना का व्यापक प्रसार हुआ।

भारत छोड़ो आन्दोलन के समय मगध क्षेत्र में अनेक सभाएँ और जुलूस आयोजित किए गए। छात्रों, युवाओं और किसानों के साथ–साथ महिलाओं ने भी आंदोलन में सक्रिय भाग लिया।[2] ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं ने आंदोलन को गति देने में विशेष भूमिका निभाई।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रदर्शन, सरकारी संस्थानों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय नारों के माध्यम से जनजागरण जैसे कार्यों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी रही। कई स्थानों पर महिलाओं ने पुलिस के दमन का साहसपूर्वक सामना किया और गिरफ्तारियाँ भी दीं।

मगध प्रमण्डल की महिलाओं की भूमिका

- जनजागरण और राष्ट्रीय चेतना का प्रसार : मगध क्षेत्र की महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन के उद्देश्यों को जनता तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने गाँव–गाँव जाकर लोगों को आंदोलन के महत्व के बारे में बताया और उन्हें ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संगठित किया।
- राष्ट्रीय गीतों, नारों और सभाओं के माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता के प्रति लोगों में उत्साह और जागरूकता उत्पन्न की।
- जुलूस और विरोध प्रदर्शन : महिलाओं ने जुलूसों और विरोध प्रदर्शनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। कई स्थानों पर उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज लेकर जुलूसों का नेतृत्व किया। ब्रिटिश प्रशासन ने इन गतिविधियों को रोकने के लिए लाठीचार्ज और गिरफ्तारियों का सहारा लिया, किंतु महिलाओं ने साहस और दृढ़ता के साथ इन चुनौतियों का सामना किया।
- क्रांतिकारियों को सहयोग : आंदोलन के दौरान अनेक पुरुष नेताओं की गिरफ्तारी के बाद महिलाओं ने क्रांतिकारियों को सहयोग प्रदान किया। उन्होंने आंदोलनकारियों को आश्रय दिया, संदेशों का आदान–प्रदान किया और आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराए। यह सहयोग आंदोलन की निरंतरता बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।
- सामाजिक बंधनों को चुनौती : उस समय समाज में महिलाओं के लिए सार्वजनिक जीवन में भाग लेना आसान नहीं था। सामाजिक रूढ़ियाँ और परंपराएँ उन्हें घर तक सीमित रखने का प्रयास करती थीं। इसके बावजूद मगध क्षेत्र की महिलाओं ने इन बंधनों को तोड़ते हुए आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई। इससे समाज में महिलाओं की भूमिका के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया।

आंदोलन में महिलाओं के समक्ष चुनौतियाँ

भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने वाली महिलाओं को अनेक प्रकार की कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना करना पड़ा–

- सामाजिक बाधाएँ : पारंपरिक समाज में महिलाओं के लिए सार्वजनिक गतिविधियों में भाग लेना कठिन था।
- शिक्षा की कमी : उस समय अधिकांश महिलाएँ शिक्षित नहीं थीं, जिससे राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी सीमित थी।
- ब्रिटिश दमन : पुलिस द्वारा लाठीचार्ज, गिरफ्तारी और उत्पीड़न जैसी कार्रवाइयाँ की जाती थीं।
- आर्थिक कठिनाइयाँ : आंदोलन में भाग लेने के कारण कई परिवारों को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा।

इन सभी चुनौतियों के बावजूद महिलाओं ने अदम्य साहस और दृढ़ संकल्प का परिचय दिया।

सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव

- भारत छोड़ो आन्दोलन में महिलाओं की सहभागिता का भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा।
- इस आंदोलन के परिणामस्वरूप महिलाओं में आत्मविश्वास और सामाजिक चेतना का विकास हुआ। उन्होंने यह सिद्ध किया कि वे केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।
- मगध क्षेत्र में भी इस आंदोलन के बाद महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा, सामाजिक सुधार और राजनीतिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने लगी।

साहित्य समीक्षा :

अंजना कुमारी (2025) ने अपने शोध लेख में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान बिहार की महिलाओं के योगदान का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया कि 1942 के आन्दोलन में बिहार की महिलाओं ने जुलूसों, सभाओं, जनजागरण तथा क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाई। लेखिका के अनुसार ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की महिलाओं ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आंदोलन को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[1]

सरोज बाला एवं जसवंत सिंह (2025) ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण करते हुए बताया कि महिलाओं ने केवल सहयोगी भूमिका ही नहीं निभाई, बल्कि कई स्थानों पर नेतृत्व भी किया। उनके अनुसार महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने स्वतंत्रता आंदोलन को एक व्यापक सामाजिक क्रांति का रूप दिया, जिसने सामाजिक पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय चेतना को मजबूत किया।[2]

प्रीति भारती (2024) ने बिहार की महिलाओं के संघर्ष और उनके स्वतंत्रता संग्राम में योगदान का अध्ययन किया है। उनके अनुसार बिहार की महिलाओं ने विभिन्न आंदोलनों में भाग लेकर सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान की। उन्होंने यह भी बताया कि महिलाओं की सहभागिता ने समाज में जागरूकता और राजनीतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[3]

पूजा कुमारी एवं प्रो. (डॉ.) उमेश कुमार (2024) ने बिहार में गांधीवादी आंदोलनों (1917–1947) में महिलाओं की भागीदारी का ऐतिहासिक विश्लेषण किया है। उनके अध्ययन के अनुसार चंपारण सत्याग्रह से लेकर भारत छोड़ो आन्दोलन तक महिलाओं की सक्रिय भूमिका रही, जिसने स्वतंत्रता आंदोलन को जनआंदोलन बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[4]

नाजनीन कौसर (2023) ने भारत छोड़ो आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष दिया कि राष्ट्रवादी आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका को लंबे समय तक पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया। उन्होंने बताया कि महिलाओं की भागीदारी ने न केवल राजनीतिक आंदोलन को मजबूत किया बल्कि सामाजिक रूढ़ियों को भी चुनौती दी।[5]

रूबी रानी (2022) ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करते हुए बताया कि स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सक्रिय योगदान दिया। उनके अनुसार महिलाओं की भागीदारी ने स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन प्रदान किया तथा समाज में लैंगिक समानता की चेतना को भी बढ़ाया।[6]

डॉ. सोनी कुमारी (2020) ने भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि और बिहार की भूमिका का अध्ययन करते हुए बताया कि इस आंदोलन में बिहार के विभिन्न वर्गों के साथ–साथ महिलाओं ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

उनके अनुसार बिहार में आंदोलन अत्यंत व्यापक और उग्र रूप में सामने आया, जिसमें महिलाओं ने भी सक्रिय भागीदारी निभाई।[7]

बिपिन चन्द्र (2016) ने अपनी प्रसिद्ध कृति "भारत का स्वतंत्रता संग्राम" में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न चरणों और आंदोलनों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने विशेष रूप से 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन को स्वतंत्रता संग्राम का निर्णायक मोड़ बताया है। उनके अनुसार इस आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें समाज के सभी वर्गोंकृकिसानों, मजदूरों, छात्रों तथा महिलाओंकृने सक्रिय रूप से भाग लिया। बिपिन चन्द्र के अनुसार महिलाओं की भागीदारी ने इस आंदोलन को व्यापक जनांदोलन का स्वरूप प्रदान किया।[8]

सुमित सरकार (2014) ने अपनी पुस्तक "आधुनिक भारत" में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया कि भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान देश के विभिन्न क्षेत्रों में जनता ने स्वतःस्फूर्त रूप से आंदोलन में भाग लिया। उनके अनुसार महिलाओं की सहभागिता ने स्वतंत्रता आंदोलन को सामाजिक आधार प्रदान किया तथा इससे महिलाओं में राजनीतिक चेतना और आत्मविश्वास का विकास हुआ।[9]

के. के. दत्ता (2010) ने अपनी पुस्तक "बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास" में बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने विशेष रूप से बिहार में भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रभाव और उसके व्यापक स्वरूप का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में भी आंदोलन अत्यंत सक्रिय रहा और इसमें महिलाओं की भागीदारी उल्लेखनीय थी। दत्ता के अनुसार महिलाओं ने जनजागरण, जुलूसों तथा आंदोलनकारियों को सहयोग प्रदान कर स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत बनाया।[10]

उद्देश्य :

1. भारत छोड़ो आन्दोलन के ऐतिहासिक संदर्भ में मगध प्रमण्डल की महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करना।
2. यह विश्लेषण करना कि मगध क्षेत्र की महिलाओं ने आंदोलन में किस प्रकार सक्रिय सहभागिता निभाई।
3. आंदोलन के दौरान महिलाओं द्वारा किए गए जनजागरण, जुलूस, विरोध प्रदर्शन तथा क्रांतिकारियों को दिए गए सहयोग का अध्ययन करना।
4. यह स्पष्ट करना कि भारत छोड़ो आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी ने मगध क्षेत्र में सामाजिक और राजनीतिक चेतना को किस प्रकार प्रभावित किया।
5. महिलाओं की सहभागिता के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन में उनके योगदान और महत्व का ऐतिहासिक मूल्यांकन करना।

परिकल्पना

1. भारत छोड़ो आन्दोलन में मगध प्रमण्डल की महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली रही।
2. महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने इस आंदोलन को जनआंदोलन का स्वरूप प्रदान किया।
3. मगध क्षेत्र की महिलाओं ने सामाजिक बंधनों को तोड़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
4. भारत छोड़ो आन्दोलन में महिलाओं की सहभागिता ने समाज में महिलाओं की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ किया।

निष्कर्ष : भारत छोड़ो आन्दोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसने पूरे देश में राष्ट्रीय चेतना को प्रबल रूप से जागृत किया। इस आंदोलन की विशेषता यह थी कि इसमें समाज के सभी वर्गों ने सक्रिय भागीदारी निभाई। महिलाओं की सहभागिता ने आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन प्रदान किया और इसे जनांदोलन का स्वरूप दिया। मगध प्रमण्डल की महिलाओं ने भी इस आंदोलन में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने जुलूसों और सभाओं में भाग लिया, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन किए तथा आंदोलनकारियों को विभिन्न प्रकार से सहयोग प्रदान किया। कई स्थानों पर महिलाओं ने ब्रिटिश प्रशासन के दमन का साहसपूर्वक सामना किया और गिरफ्तारियाँ भी दीं। इस आंदोलन में भाग लेकर महिलाओं ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम को मजबूत किया बल्कि समाज में अपनी सक्रिय भूमिका को भी स्थापित किया। इससे

महिलाओं में आत्मविश्वास और राजनीतिक चेतना का विकास हुआ तथा समाज में उनकी स्थिति के प्रति दृ ष्टिकोण में परिवर्तन आया।

अतः यह स्पष्ट होता है कि भारत छोड़ो आन्दोलन की सफलता में मगध प्रमण्डल की महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था। उनका साहस, त्याग और संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ सूची

1. रोमिला थापर (2000) भारत का इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 104
2. रामचन्द्र गुहा (2011) भारत : एक गांधी के बाद का इतिहास, पेंगुइन, पृ0 61
3. अंजना कुमारी (2025) भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहार की महिलाओं की भूमिका, नई दिल्ली, इतिहास प्रकाशन, पृ0 48
4. सरोज बाला, एवं जसवंत सिंह (2025) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी, जयपुर, रावत पब्लिकेशन, पृ0 52
5. प्रीति भारती (2024) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बिहार की महिलाओं का योगदान, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ0 147
6. पूजा कुमारी, एवं उमेश कुमार (2024) गांधीवादी आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका (1917–1947), पटना, शैक्षिक प्रकाशन, पृ0 94
7. नाजनीन कौसर (2023) भारत छोड़ो आन्दोलन में स्त्रियों की भागीदारी, अलीगढ़, अकादमिक पब्लिशर्स, पृ0 137
8. रूबी रानी (2022) भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका, वाराणसी, ज्ञान प्रकाशन, पृ0 62
9. सोनी कुमारी (2020) भारत छोड़ो आंदोलन और बिहार की भूमिका, पटना, बिहार रिसर्च सोसाइटी, पृ0 13
10. बिपिन चन्द्र (2016) भारत का स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ0 59
11. सुमित सरकार (2014) आधुनिक भारत, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 33
12. के. के. दत्ता (2010) बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ0 71

पूर्वी उत्तर प्रदेश की अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों पर राजकीय नीति एवं कार्यक्रमों का सामाजिक, आर्थिक विकास पर प्रभाव

स्वाति शाही*

सारांश

पूर्वी उत्तर प्रदेश, जो उत्तर प्रदेश राज्य में सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से समृद्ध है, लेकिन सामाजिक असमानताओं से ग्रस्त क्षेत्र होने के कारण अनुसूचित जाति एवं जनजाति समुदायों की स्थिति विशेष रूप से चिंतनीय बनी हुई है। राज्य की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति की हिस्सेदारी लगभग 20.7 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति की हिस्सेदारी लगभग 0.57 प्रतिशत है, जिसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के जनपदों जैसे वाराणसी, गोरखपुर, आजमगढ़, सोनभद्र, बहराइच, बलरामपुर, गोंडा, श्रावस्ती, बस्ती, संत कबीर नगर, सिद्धार्थ नगर, गोरखपुर, देवरिया, कुशीनगर, महाराजगंज, अयोध्या, अंबेडकर नगर, सुल्तानपुर, आजमगढ़, मऊ, बलिया, प्रयागराज, कौशांबी, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, संत रविदास नगर, सोनभद्र, वाराणसी, चंदौली, गाजीपुर, जौनपुर में अनुसूचित जाति एवं जनजाति समुदायों के लोग मुख्य रूप से कृषि श्रमिक, भूमिहीन मजदूर, और वनवासी के रूप में जीविका चलाते हैं। भारत सरकार द्वारा प्रदान की गई आरक्षण योजना, छात्रवृत्ति, आवास योजनाएं (जैसे पीएम आवास योजना), रोजगार गारंटी (जैसा मनरेगा), तथा जनजातीय विकास अभियान, किसान क्रेडिट कार्ड, उज्ज्वला योजना, विधवा पेंशन योजना, वृद्धा पेंशन योजना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी राजकीय नीतियों एवं कार्यक्रम इन समुदायों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए महत्वपूर्ण है। इस शोध पत्र में द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर इन नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। इन नीतियों के प्रभाव से अनुसूचित जाति एवं जनजातियों में शिक्षा दर में वृद्धि, स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार और आय में भी सुधार हुआ है। किंतु क्रियान्वयन में कमी, भेदभाव तथा जागरूकता में कमी के कारण चुनौतियां बनी हुई है। यह अध्ययन सुझाव देता है कि लक्षित अभियान एवं निगरानी से इन कार्यक्रम एवं नीतियों का प्रभाव और गहरा किया जा सकता है।

मुख्य शब्द - पूर्वी उत्तर प्रदेश, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, राजकीय नीति, प्रधानमंत्री आवास योजना, मनरेगा, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास

प्रस्तावना

भारतीय समाज की जटिल संरचना में अनुसूचित जाति एवं जनजाति समुदाय के लोग सदियों से सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक शोषण का शिकार रहे हैं। स्वतंत्र भारत के संविधान ने इन समुदायों के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान किए हैं। जिसमें मुख्य रूप से अनुच्छेद 15 (भेदभाव निषेध), अनुच्छेद 17 (अस्पृश्यता उन्मूलन), अनुच्छेद 46 (शिक्षा एवं आर्थिक हितों की रक्षा) तथा अनुच्छेद 330 से 335 तक (अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति आरक्षण)। उत्तर प्रदेश भारत का सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य तथा जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से चौथा बड़ा राज्य होने के नाते इन नीतियों का क्रियान्वयन एक चुनौती पूर्ण कार्य है । विशेष रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश जो गंगा घाटी के जिलों- वाराणसी, गोरखपुर, आजमगढ़, मऊ, बलिया, देवरिया, कुशीनगर, महाराजगंज, सिद्धार्थनगर, बस्ती, संत कबीर नगर, आजमगढ़, जौनपुर, मिर्जापुर, सोनभद्र तथा चंदौली से मिलकर बनता है, इन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति एवं जनजाति की आबादी उच्च है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य में अनुसूचित जाति की आबादी 41 मिलियन से अधिक है। जिसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिलों में चमार, जाटव, धोबी, पासी, जैसी जातियां प्रमुख हैं, जबकि अनुसूचित जनजाति में थारू, बुक्सा, गोंड, कोल, आदि समुदाय सोनभद्र एवं महाराजगंज जैसे जनपदों में केंद्रित हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश की भौगोलिक विविधता

यह क्षेत्र उत्तरी मैदान से विंध्य पठार तक विस्तृत है। क्षेत्र में इस समुदाय के लोग कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर निर्भर है और अनुसूचित जनजाति के ज्यादातर लोग श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं अर्थात अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अधिकांश लोग प्रारंभिक क्षेत्र में कार्यरत हैं। सामाजिक रूप से अस्पृश्यता, भूमि असमानता तथा साक्षरता की कमी, रोजगार की कम उपलब्धता, पिछड़ापन, गरीबी, प्राथमिक सुविधाओं का अभाव, आदि कारणों से उनकी प्रगति बाधित है। आर्थिक दृष्टि से 73.4 प्रतिशत अनुसूचित

* शोधार्थी, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, मो. 9026473028, Email id:swatishahi9696@gmail.com

जनजाति के परिवार गरीबी रेखा से नीचे हैं, तथा 83.82 प्रतिशत लोग अनियमित कृषि मजदूरी पर निर्भर हैं। भारत सरकार द्वारा संचालित नीतियां जैसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), प्रधानमंत्री आवास योजना, उज्ज्वला योजना, किसान क्रेडिट योजना, वृद्धा पेंशन योजना, विधवा पेंशन योजना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति, आश्रम पद्धति विद्यालय तथा वन अधिकार अधिनियम (2006) इन समुदायों को सशक्त बनाने का प्रयास करती है। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के नेतृत्व में 'धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान' ने 26 जिलों के 517 अनुसूचित जनजाति बहुल गांव में संतृप्ति-आधारित विकास को बढ़ावा दिया है। इस पत्र का उद्देश्य इन नीतियों के सामाजिक (शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय) एवं आर्थिक (रोजगार, आय, आवास) प्रभाव का मूल्यांकन करना है, विशेष रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश में।

शोध प्रश्न

1. यह नीतियां अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सामाजिक उत्थान में कितनी प्रभावी हैं?
2. आर्थिक विकास पर इनका क्या प्रभाव पड़ा है?
3. क्रियान्वयन की चुनौतियां क्या है?

साहित्य समीक्षा

अनुसूचित जाति और जनजाति विकास पर साहित्य व्यापक है, जो संवैधानिक प्रावधानों से लेकर क्रियान्वयन की कमियों तक फैला है।

राय (2018) के अनुसार, उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जनजाति समुदाय वंचना की स्थिति में है, उनकी आर्थिक स्थिति एवं जीवन स्तर निम्न है। सोनभद्र जैसे पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिलों में अनुसूचित जनजाति की साक्षरता एवं रोजगार दर न्यूनतम है जहां पारंपरिक कृषि पर निर्भरता प्रमुख है। इसी प्रकार आजमगढ़ जिले में अनुसूचित जाति की सामाजिक जनसंख्या विवरण अध्ययन से पता चलता है कि यह 20% से अधिक आबादी है, लेकिन भूमि स्वामित्व एवं शिक्षा में ये जातियां पिछड़ी हैं।

नीतिगत प्रभाव पर ILO की रिपोर्ट में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए न्यूनतम मजदूरी एवं सामुदायिक विकास योजनाओं को आर्थिक प्रोत्साहन से जोड़ती है। भारत सरकार की 'प्रमोशन आफ सोशल, इकोनामिक एंड एजुकेशनल स्टेटस ऑफ एससी/एसटी योजना ने शिक्षा एवं स्वास्थ्य में सुधार किया है, लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश में क्रियान्वयन और असमान है। मनरेगा का प्रभाव ग्रामीण भारत में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए रोजगार प्रदान करने में सकारात्मक पाया गया है, लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जनपदों में भुगतान में विलंब एवं कार्य की कमी विकास में बाधा है।

शिक्षा में पूर्वी उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जनजातियों के लिए विद्यालय/स्कूल शिक्षा के निर्धारित अध्ययन से पता चलता है कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति (73.4% गरीबी) एवं नीतिगत कमियां (जैसे नवोदय विद्यालय में केवल 0.85% नामांकन) प्रमुख बाधाएं हैं। जाति-आधारित राजनीति का सतत् विकास पर नकारात्मक प्रभाव पाया गया, उत्तर प्रदेश में वोट बैंक राजनीतिक नीतियों को प्रभावित करता है। अनुसूचित जाति की महिलाओं पर सरकारी कल्याण योजनाओं का सामाजिक गतिशीलता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, लेकिन लिंग एवं जाति भेदभाव अब भी बरकरार हैं।

हाल के अध्ययनों में, मुख्यमंत्री योगी की नीतियों ने अनुसूचित जनजाति गांव में बुनियादी सुविधाएं प्रदान की जैसे 23,000 वनवासी परिवारों को भूमि पट्टा देना। हालांकि ऐतिहासिक भूमि नीतियां निम्न जातियों की गतिशीलता को सीमित करती हैं। यह साहित्य दर्शाता है की नीतियां सैद्धांतिक रूप से मजबूत है लेकिन स्थानीय संदर्भ में इनका प्रभाव सीमित है।

विधि विज्ञान

यह शोध गुणात्मक एवं मात्रात्मक द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। स्रोत में जनगणना 2011, सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना, भारत सरकार एवं उत्तर प्रदेश सरकार की वार्षिक रिपोर्ट, शोध पत्र तथा समाचार स्रोत शामिल हैं। विश्लेषण के लिए सामग्री विश्लेषण विधि अपनाई गई है, जहां नीतियों को वर्गीकृत (शिक्षा रोजगार एवं स्वास्थ्य) किया गया तथा प्रभाव को आंकड़ों से मापा गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के जनपदों वाराणसी, गोरखपुर, आजमगढ़, सोनभद्र, बहराइच, बलरामपुर, गोंडा, श्रावस्ती, बस्ती, संत कबीर नगर, सिद्धार्थ नगर, गोरखपुर, देवरिया, कुशीनगर, महाराजगंज, अयोध्या, अंबेडकर नगर, सुल्तानपुर, आजमगढ़, मऊ, बलिया, प्रयागराज, कौशांबी, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, संत रविदास नगर, सोनभद्र, वाराणसी, चंदौली, गाजीपुर, जौनपुर पर केंद्रित रखा गया।

विश्लेषण:- नीतियां एवं उनके प्रभाव

प्रमुख राजकीय नीतियां एवं कार्यक्रम

उत्तर प्रदेश सरकार ने अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण के लिए समाज कल्याण विभाग की स्थापना की है, जो योजनाओं का क्रियान्वयन करता है प्रमुख नीतियां निम्न है:-

1. आरक्षण नीति
   - शिक्षा- अनुसूचित जाति 15%, अनुसूचित जनजाति को 7.5% आरक्षण प्रदान किया गया है।
   - रोजगार- सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति को 15% एवं अनुसूचित जनजाति को 7.5% आरक्षण दिया गया है।
   - राजनीति- लोकसभा एवं विधानसभा में आरक्षण का प्रावधान किया गया है, वही उत्तर प्रदेश में स्थानीय निकाय चुनाव में अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए आरक्षण का प्रावधान है।

2. **शिक्षा संबंधी योजनाएं:-**

उत्तर प्रदेश सरकार अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों के लिए मैट्रिक पूर्व/पश्चात छात्रवृत्ति, मुफ्त छात्रावास (आश्रम पद्धति) बुक-बैंक और कौशल प्रशिक्षण जैसी कई योजनाएं चल रही है। यह योजनाएं समाज कल्याण विभाग द्वारा शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता और लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के लिए संचालित की जाती हैं।

छात्रवृत्ति योजनाएं:- मैट्रिक पूर्व और मैट्रिक पश्चात छात्रवृत्ति जो अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों को शिक्षा जारी रखने में मदद करती है।

आश्रम पद्धति विद्यालय एवं छात्रावास:- घर से दूर रहकर पढ़ने वाले छात्रों के लिए समाज कल्याण विभाग द्वारा निशुल्क छात्रावास (बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना) एवं आवासीय विद्यालय संचालित है।

शुल्क प्रतिपूर्ति योजना:- आर्थिक रूप से कमजोर छात्रों को शिक्षा में वित्तीय बाधाओं को दूर करने के लिए ट्यूशन फीस की प्रतिपूर्ति।

बुक-बैंक योजना:- अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों के लिए निशुल्क पुस्तकों की व्यवस्था।

कौशल विकास और तकनीकी प्रशिक्षण:- 18-45 वर्ष के युवाओं के लिए प्लंबर, इलेक्ट्रीशियन, ब्यूटीशियन, कंप्यूटर आदि का चार माह का प्रशिक्षण और ₹5000 की प्रोत्साहन राशि प्रदान करना।

मुख्यमंत्री कन्या सुमंगला योजना:- पात्र परिवारों की लड़कियों को शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना।

अस्वच्छ पेशा में लगे व्यक्तियों के लिए विशेष छात्रवृत्ति:- इस कार्य में लगे परिवारों के बच्चों के लिए विशेष सहायता।

प्रधान जनजाति आदिवासी न्याय महाअभियान (पीएम-जनमन) :- अनुसूचित जनजातियों के समावेशी विकास के लिए केंद्र-राज्य संयुक्त योजना।

3. **रोजगार एवं आर्थिक योजनाएं:-**

मनरेगा:- अनुसूचित जाति एवं जनजाति परिवारों को ग्रामीण क्षेत्रों में हर वित्तीय वर्ष में 100 दिनों की गारंटीयुक्त अकुशल शारीरिक श्रम की सुविधा प्रदान करता है। इसके अलावा वन क्षेत्र में रहने वाले अनुसूचित जातियों/जनजातीयों परिवारों के लिए 150 दिनों का काम अनिवार्य है।

स्टैंड-अप इंडिया योजना:- पूर्वी उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति के लिए स्टार्टअप एक प्रमुख योजना है, इसके तहत बैंक 10 लख रुपए से एक करोड रुपए तक का ऋण ग्रीन फील्ड प्रोजेक्ट (नए उद्यम) के लिए देते हैं यह योजना विनिर्माण, सेवाओं या व्यापारिक क्षेत्र में उद्यमिता को बढ़ावा देता है। जैसे कृषि आधारित उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण, दाल मिल, कोल्ड स्टोरेज और जैविक खेती का विपणन।

हस्तशिल्प और टेक्सटाइल:- स्थानीय बुनकर, कालीन निर्माण और हस्तशिल्प उत्पाद।

लघु विनिर्माण:- कृषि उपकरण, पैकेजिंग और प्लास्टिक उत्पाद।

सेवा क्षेत्र:- कंप्यूटर केंद्र, लॉजिस्टिक्स और छोटे तकनीकी स्टार्टअप।

यह योजनाएं पूर्वी उत्तर प्रदेश की अनुसूचित जातियों जनजाति को नए उद्योग स्थापित करने के लिए बेहतरीन अवसर उपलब्ध कराती हैं।

वन अधिकार अधिनियम:- इस अधिनियम के तहत उत्तर प्रदेश सरकार (समाज कल्याण विभाग) ने अनुसूचित जनजाति के 23000 से अधिक परिवारों को वन भूमि के पट्टे (भूमि अधिकार पत्र) देकर ऐतिहासिक अन्याय को समाप्त किया है। इस पहल से आदिवासियों को उनके पैतृक भूमिका मालिकाना हक मिला है, जिससे वह अब राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज हो गए हैं और विस्थापन के दर से मुक्त हुए हैं। भूमि स्वामित्व से निवासियों को सरकारी आवास और अन्य विकास योजनाओं का लाभ उठाने में मदद मिली है। जिसका प्रभाव उनके विकास पर पड़ा है और इस अधिनियम ने औपनिवेशिक काल से चली आ रही भूमि असुरक्षा को समाप्त किया है।

4. **आवास एवं स्वास्थ्य योजनाएं:-** पूर्वी उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए प्रमुख योजनाओं में पीएम-जनमन (विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों के लिए), प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण (PMAY-G), आयुष्मान भारत (PMAY-G) प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना, धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान (DAJGUA), प्रधानमंत्री अनुसूचित जाति अभ्युदय योजना (PM

AJAY), बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना (BJRCY), प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान और मातृ वंदना योजना चलाई जा रही है।

इन योजनाओं के परिणाम स्वरुप पूर्वी उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जाति एवं जनजातियों को बेहतर आवास, उचित स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान की जा रही है, जिससे उनके जीवन में पर्याप्त सुधार हो सके।

प्रधानमंत्री जनजाति आदिवासी न्याय महा अभियान (PM-JANMAN):- यह योजना विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए है, जिसके तहत आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा और पेयजल जैसी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं।

प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण (PMAY-G):- सूचित जाति और जनजाति के परिवारों को पक्का घर बनाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

आयुष्मान भारत योजना (PM-JAY):- इस योजना के तहत ₹500000 तक का मुफ्त इलाज प्रदान किया जाता है।

सुरक्षा कानून:- अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम- 1989 जो अपराधों पर त्वरित न्याय सुनिश्चित करता है उत्तर प्रदेश विशेष कर पूर्वी क्षेत्र में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए सुरक्षा मुख्य रूप से अनुसूचित जातियों जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 के तहत सुनिश्चित की जाती है जो भेदभाव हिंसा और जमीन हड़पने के खिलाफ सख्त दंडात्मक कार्रवाई और त्वरित न्याय के लिए विशेष अदालतों की व्यवस्था करता है।

संविधान के अनुच्छेद 275(1) के तहत अनुसूचित जातियों के कल्याण को बढ़ावा देता है तथा प्रशासन के स्तर को ऊपर उठने के लिए राज्यों को केंद्रीय सहायता प्रदान करता है।

सामाजिक विकास पर प्रभाव

राजकीय नीतियों एवं कार्यक्रमों के प्रभाव से सामाजिक संकेतक को में सुधार हुआ है। शिक्षा में पूर्वी उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जनजाति का नामांकन तो बड़ा है लेकिन ड्रॉप आउट दर (कक्षा 1 से 5 में 35.6 प्रतिशत) अभी भी उच्च बनी हुई है। आश्रम पद्धति विद्यालयों के माध्यम से भी राज्य सरकार द्वारा बच्चों की नामांकन दर को बढ़ाया जाने का प्रयास किया जा रहा है। जिस कारण साक्षरता दर में वृद्धि हो रही है। आश्रम पद्धति विद्यालय ग्रामीण और कमजोर वर्ग के छात्रों को मुक्त शिक्षा प्रदान करने महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन विद्यालयों में कक्षा 6 से 12 तक की शिक्षा, छात्रावास, वर्दी, पुस्तक और भोजन की व्यवस्था पूरी तरह से निशुल्क हैं जिस कारण साक्षरता दर में वृद्धि हो रही है। लेकिन प्रशासनिक सुधारो और शिक्षकों की रिक्तियां को भरने की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है।

स्वास्थ्य में, पूर्वी उत्तर प्रदेश की अनुसूचित जातियां जनजाति:-

स्वास्थ्य क्षेत्र में चली आ रही योजनाओं जैसे आयुष्मान कार्ड म मात्र तो वंदना योजना के माध्यम से स्वास्थ्य सेवा में समानता आई है इन योजनाओं के माध्यम से कैशलेस स्वास्थ्य बीमा प्रदान कर सरकार ने बड़ी आर्थिक राहत दी है इस योजना से इन वंचित वर्गों की सरकारी बनने की अस्पतालों तक पहुंच आसान हुई है जिससे महंगी बीमारियों के इलाज में होने वाला कर्ज कम हुआ है। यह योजनाएं अनुसूचित जाति एवं जनजाति समुदाय के लिए संजीवनी की तरह काम कर रही हैं। जो उन्हें स्वास्थ्य, सुरक्षा और गरिमा पूर्ण जीवन प्रदान कर रही हैं। लेकिन अभी भी जागरूकता की कमी के कारण अनुसूचित जाति एवं जनजाति समुदाय में कुपोषण की स्थिति उच्च बनी हुई है।

सामाजिक न्याय के क्षेत्र में:- अत्याचार निवारण अधिनियम से अपराधों में कमी आई है लेकिन कुछ जनपदों में अभी भी भेदभाव बरकरार है। सरकार द्वारा चलाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं से महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रहा है तथा महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिल रहा है। राजनीतिक क्षेत्र में भी अनुसूचित जातियों जनजातियों की भागीदारी बढ़ रही है।

आर्थिक विकास पर प्रभाव

आर्थिक रूप से मनरेगा ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अनुसूचित जाति एवं जनजाति को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराता है जिससे उनकी आय में 20-30% की वृद्धि देखने को मिलती है। प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना (PMAY) के तहत 11 लाख से अधिक परिवारों को आवास उपलब्ध कराया गया है जो आवासहीनता को कम करता है। स्टैंड अप इंडिया योजना से अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं उद्यमियों को ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है जिससे वह उद्योग धंधे की स्थापना पर और अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर सकें। किसान क्रेडिट योजना से अनुसूचित जाति एवं जनजाति कृषकों को कृषि पर ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है। जिससे उनकी कृषि से आय की स्थिति में सुधार हो रहा है। वन अधिकार अधिनियम से भूमि स्वामित्व बढ़ा है जो आर्थिक स्थिरता प्रदान करता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से राशन उपलब्ध कराया जा रहा है जिससे उनके आर्थिक बोझ को कम किया जा सके तथा उनके पोषण स्तर में भी सुधार देखने को मिल रहा है।

इन योजनाओं के परिणाम स्वरुप अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का देश की जीडीपी में योगदान बढ़ रहा है, लेकिन असमानता अभी भी बनी हुई है।

चुनौतियां एवं सीमाएं

1. इन योजनाओं के क्रियान्वयन में कमी।
2. अनुसूचित जातियों जनजाति के लोगों में जागरूकता की कमी।
3. भ्रष्टाचार एवं पूर्वाग्रह।
4. पूर्वी उत्तर प्रदेश में बाढ़ की स्थिति।
5. गरीबी
6. शिक्षा में कमी
7. जातिगत राजनीति का विकृत रूप

इसके अलावा बहुत सी बाधाएं हैं जो इनके विकास में व्यवधान उत्पन्न कर रही हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

पूर्वी उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में राजकीय नीतियों एवं कार्यक्रमों महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरुप उनके जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। जैसे शिक्षा, रोज़गार एवं आवास । हालांकि क्रियान्वयन में कमियां प्रगति को सीमित करती हैं।

सुझाव

पूर्वी उत्तर प्रदेश (पूर्वांचल) में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति पर राजकीय नीतियों के सुचारू क्रियान्वयन के लिए व्यावहारिक सुझाव

पूर्वी उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति की आबादी काफी अधिक (लगभग 21%) है, जबकि अनुसूचित जनजाति की आबादी बहुत कम (0.57%) है। यहां गरीबी, सामाजिक भेदभाव, भूमि-हीनता और बुनियादी सुविधाओं की कमी जैसी चुनौतियां क्रियान्वयन को प्रभावित करती हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के समाज कल्याण विभाग और उत्तर प्रदेश अनुसूचित जाति वित् एवं विकास निगम लिमिटेड के माध्यम से छात्रवृत्ति, आर्थिक सहायता, आवास, शिक्षा-स्वास्थ्य और अत्याचार निवारण जैसी योजनाएं चल रही हैं। इनका सुचारू क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा रहे हैं:

1. जागरूकता और पहुंच बढ़ाना-

- ब्लॉक और पंचायत स्तर पर नियमित शिविर लगाएं। स्थानीय भाषा (भोजपुरी, अवधी) में प्रचार-प्रसार करें ताकि गांवों तक योजनाओं की जानकारी पहुंचे।
- मोबाइल ऐप और हेल्पलाइन (जैसे 14568) के माध्यम से आवेदन प्रक्रिया सरल बनाएं। प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण और PFMS से पारदर्शिता सुनिश्चित करें।

2. निगरानी और जवाबदेही की मजबूती-

- हर गांव में अनुसूचित जाति/जनजाति सतर्कता समिति गठित करें, जिसमें स्थानीय अनुसूचित जाति/जनजाति के प्रतिनिधि शामिल हों। अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत शिकायतों का समयबद्ध निपटारा (30-60 दिन) सुनिश्चित करें।
- जिला स्तर पर मासिक समीक्षा बैठकें अनिवार्य करें।

3. समन्वय और एकीकृत कार्यान्वयन-

- समाज कल्याण विभाग को नोडल बनाकर शिक्षा, स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास, मनरेगा और प्रधानमंत्री आवास योजना जैसे विभागों के साथ सम्मन्वय स्थापित करें।
- उत्तर प्रदेश अनुसूचित जाति वित् एवं विकास निगम लिमिटेड की सहायता अनुदान , आदर्श ग्राम योजना (40% से अधिक अनुसूचित जाति आबादी वाले गांवों के विकास) और होस्टल निर्माण योजनाओं को पूर्वी उत्तर प्रदेश के उच्च अनुसूचित जाति वाले जिलों (जैसे आजमगढ़, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, मऊ) में प्राथमिकता दें।

4. आर्थिक सशक्तिकरण पर फोकस-

- उत्तर प्रदेश अनुसूचित जाति वित् एवं विकास निगम लिमिटेड के तहत कौशल प्रशिक्षण, ऋण और उद्यमिता योजनाओं को बढ़ावा दें। स्वयं सहायता समूहों को उत्तर प्रदेश राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के साथ जोड़ें।
- पूर्वी उत्तर प्रदेश में विशेष आर्थिक शिविर लगाकर मुसहर, कोल, थारू आदि समुदायों को प्राथमिकता दें। सामाजिक-आर्थिक और जाति-जनगणना-2011 के आधार पर सबसे वंचित परिवारों को पहचानकर प्रमुख योजनओं जैसे आवास, रोजगार और पेंशन को लागू करें।

5. शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा-

- अनुसूचित जाति/जनजाति छात्रवृत्ति और होस्टल योजनाओं में ऑनलाइन आवेदन अनिवार्य करें। पूर्वी उत्तर प्रदेश में नए होस्टल और आवासीय विद्यालय बनाएं।
- स्वास्थ्य और पेंशन योजनाओं (मुख्यमंत्री पेंशन योजना) में अनुसूचित जाति/जनजाति को 30% से ज्यादा कवरेज सुनिश्चित करें।

6. क्षेत्र-विशेष उपाय (पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए)-

- पूर्वांचल के पिछड़े जिलों में मोबाइल कानूनी सहायता क्लिनिक और विशेष कैंप लगाएं। महिला, दलित और अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व बढ़ाएं।
- Vision 2030 UP के अनुसार अनुसूचित जाति/जनजाति बहुल क्षेत्रों में कौशल प्रशिक्षण, स्वयं सहायता समूह और बाजार पहुँच पर जोर दें ताकि 2030 तक गरीबी आधी हो।

7. अन्य व्यावहारिक कदम

- अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए जाति संवेदनशीलता प्रशिक्षण अनिवार्य करें।
- शिकायत निवारण के लिए स्वतंत्र निगरानी संस्था या अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग को सशक्त बनाएं।
- वार्षिक ऑडिट और कैग रिपोर्ट के आधार पर सुधार करें।

इन सुझावों से योजनाओं का लाभ सीधे लाभार्थियों तक पहुंचेगा, भेदभाव कम होगा और सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण तेज होगा।

संदर्भ

1. क्रॉनिकल इंडिया (2023), उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयास।
2. दृष्टि आईएएस (2024) अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याणकारी योजनाएं।
3. ND Publishers (2023), Determinants of School Education of Schedule Tribes in Eastern UP.
4. ResearchGate (2023), Impact of Caste Based Politics in UP.
5. Chaudhari, Dr. Ashish Kant (2023), Schedule Tribes and Census: A case study in Uttar Pradesh.
6. Deskar, Dr. Rakesh Rajendrakumar, 2025, The impact of Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme in India: An overview.
7. Next IAS (2025), Welfare of Vulnerable Sections: SCs, STs, OBCs, Women and more.
8. Sustainable Development Goals Vision 2030 Uttar Pradesh.
9. Jansatta (2025): सीएम योगी की नीतियों से अनुसूचित जनजातीय गांव में विकास।
10. पंत, पुष्पेश (2005), "ग्रामीण आवास: चुनौतियां और संभावनाएं" कुरुक्षेत्र पत्रिका, अक्टूबर पृष्ठ 22-23.
11. बिष्ट, राजेंद्र सिंह (2006) "भारत निर्माण और ग्रामीण आवास" कुरुक्षेत्र पत्रिका, अक्टूबर पृष्ठ 58.
12. मजूमदार, अम्लन ज्योति 2006 "सुनिश्चित रोजगार गारंटी", कुरुक्षेत्र पत्रिका, अक्टूबर, पृष्ठ 75-77